शमशेर बहादुर सिंह

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी मााया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं, इसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है। भारत में लेखन-कला का सम्भवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख।

नागार्जुन कोण्डा, दूसरी सदी ई.
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

शमशेर बहादुर सिंह

प्रभाकर श्रोत्रिय

साहित्य अकादेमी

Shamsher Bahadur Singh: A monograph by Prabhakar Shrotriya, on the modern Hindi writer, Sahitya Akademi, New Delhi (1997), Rs. 25.

प्रथम संस्करण : 1997

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

विक्रय विभाग : स्वाति, मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुम्बई 400 014

जीवनतारा बिल्डिंग, चौथी मंज़िल, 23 ए/44 एक्स, डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता 700 053

304-305, अन्ना सालई, तेनामपेट, चेन्नई 600 018

ए डी ए रंगमन्दिर, जे. सी. मार्ग, बंगलौर 560 002

ISBN 81-260-0310-3

मूल्य : पच्चीस रुपये

मुद्रक : सविता प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-110 032

अनुक्रम

1

जीवन-यात्रा

छोटी सी काया में बड़ा आदमी

मैं समय की एक लम्बी आह

शमशेर से मिलिए। एक दुबली-सिकुड़ी काया, जो आपके प्यार से और भी सिकुड़ जाती है— फुहारों वाली डाली जैसी। आँखों में पनीली चमक जो मोटे चश्मे के बावज़ूद निर्मल पयस्विनी है, तृप्त करने वाली, पुष्ट करने वाली और आपके अहंकार को तरलता से ठेल सकने वाली। आप लाख तीसमारखाँ हों, शमशेर के साथ ऐसा कुछ नहीं कर सकते जो लावण्य के साथ न किया जाने योग्य हो। वे गुफ़्त-गू ऐसे लहजे में करेंगे, गोया आप उनके दिल का टुकड़ा हों— चाहे कितने ही अजनबी हों आप। मुँह से ज़्यादा इशारे में शमशेर कविता समेत व्यक्त होते हैं। छोटे-छोटे, टूटे-टूटे शब्दों, वाक्यों में वे जो कहते हैं— बड़ी तक़रीरें भी क्या कहेंगी? आपकी बातें ग़ौर से सुनेंगे— यहाँ तक कि बेवकुफ़ी भी। लगेगा कि यह आदमी आप पर सौ जान से फ़िदा है। मगर उसके भीतर का सूप जो फटक रहा है और अपने लिए जो चुन रहा है उसका एहसास कितनों को होता है। कूड़े से भी बीन सकता है वह यूरेनियम (आधुनिक कविता में यह कला शमशेर के पास ख़ूब रही है।)। कहीं आप अपमानित न होंगे, न अपनी आँखों में छोटे; क्योंकि जो भूसी है वह आपसे छिपाकर फेंकी गई है। हर अदने आदमी के प्रति भी इतना सम्मान और इतनी हमदर्दी से क्या आपको नहीं लगता कि यह सारी इंसानी बिरादरी से प्यार करने वाले कवि में ही संभव है।

शमशेर को मैंने कई बार क़रीब से देखा, जाना और शायद 1987 में अंतिम बार। इसके बाद 1993 की 12 मई ने जो समाचार दिया, उसका मतलब था कि अब इस इंसान को देह में नहीं पाया जा सकेगा। शमशेर को पार्किंसंस जैसी, नसों को धीमे-धीमे शिथिल करने वाली बीमारी लग गई थी— 'शिला का ख़ून पी रही थीं जड़ें, जो स्वयं 'पत्थर' होती जा रही थीं, क्या पता था कवि को कि क्षय के रोगी का यह चित्र जो उसकी आँखों में उतरा था, वह स्वयं उसके जीवन में

साक्षात उतर आएगा और मृत्यु का कारण बनेगा।

कुलदीप सिंह जिसे बाद में माँ परम देवी और पिता बाबू तारीफ़ सिंह ने शमशेर बहादुर सिंह जैसा भारी भरकम नाम दिया था, 3 जनवरी 1911 को अपने ननिहाल देहरादून में जाट परिवार (पँवार गोत्र) में जनमा। उसके नाना मुंशी भूपसिंह (जिनकी छाया में शमशेर का बचपन बीता) हकीम और अदीब थे। 1980 के इन्दौर भाषण में जन्म स्थान के परिवेश का चित्र खींचते हुए शमशेर बताते हैं :

> 'जहाँ मैं पैदा हुआ उस मकान के सामने गुरु रामदास का गुरुद्वारा है और उसके सामने एक बड़ा तालाब है, दुकानें हैं, बस्ती है। उसके पीछे मसूरी पहाड़ का दृश्य दिखाई देता है और दूसरी चोटियाँ, छोटी-मोटी चोटियाँ हैं। रात को वहाँ रोशनी जगमग-जगमग करती है जो देहरादून से देखी जा सकती है।'

इस सघन सामाजिकता, मोहक प्राकृतिक छवि और धार्मिकता का मिला-जुला वातावरण शमशेर की स्मृति में आजीवन बसा रहा, जिसने शायद कविता के कई अनोखे द्वार खोले।

नाना मुंशी भूपसिंह का घर शहरी मध्यम बाबू वर्ग के घर जैसा था, यानी पढ़ाई-लिखाई, व्यवहार में अपेक्षाकृत आधुनिक। शमशेर के अनुसार 'ननिहाल का जो वातावरण था वो बड़ा शाइस्ता, बहुत ही सुसभ्य ... सारे अदब क़ायदे सिखाए जाते थे... और भाषा ग़लत बोलने नहीं दी जाती थी।' नाना जी स्वयं फ़ारसी-उर्दू के अध्यापक थे। शमशेर के जन्म के समय वे स्कूली नौकरी से रिटायर होकर यूनानी और मिस्रानी चिकित्सा पद्धति की हकीमी करते थे। मामा लोग भी अदब-क़ायदे के थे। वातावरण उर्दू का था, वैसे भी स्कूलों में उर्दू पढ़ाई जाती थी। सभ्यता, भाषा और शिक्षा का यह संस्कार मिला था बालक को।

शमशेर की माँ परम देवी उनके पिता की तीसरी पत्नी थीं : 'पिताजी की दो पत्नियाँ— तीन साल के अन्दर-अन्दर उनका देहान्त हो गया था।' माँ सुन्दर, बहुत सुन्दर थीं। शमशेर कहते हैं— 'My mother was loveliest and pretiest woman I had ever seen. She became a symbol of beauty for me...' मदर नाटी थीं। पर उनमें तमाम हारमनी थी।' कविता में इस माँ को प्रत्यक्ष देखें—

> 'एक अनंत सौन्दर्य मेरी मा/ मेरी मा की मुस्कान...।'
>
> *(कहीं बहुत दूर से.. पृ. 63)।*

शमशेर के नारी सौंदर्य में जो एक सुघर कोमलता, पवित्रता और वात्सल्य का स्निग्ध स्पर्श दिखाई देता है, उसके मूल में माँ रही हो तो क्या अचरज! माँ भागवत पढ़ा करती थीं, जिसकी रोचकता बच्चे के मन को खींचती थी। शमशेर कहते हैं—

'रिलीजन मैंने अपने माँ और पिता से सीखा। वही जो संस्कार मुझ पर है।' शमशेर को याद पड़ता है कि हिन्दी पढ़ने की शुरूआत वहीं से यानी शायद माँ के भागवत पढ़ने से हुई— माँ के अनुकरण में। माँ में सेवा और कर्तव्य परायणता अद्‌भुत थी। उनकी मृत्यु (1920)ही पड़ोस की प्रसूता की लगातार देख भाल करते दिन में कई कई बार घर आकर नहाने के कारण मियादी बुख़ार में हुई। (माँ की कर्तव्य परायणता शमशेर के संस्कारों ने कभी भूली न थी) उस समय शमशेर नौ वर्ष के थे और छोटे भाई तेज बहादुर सात-आठ साल के। अब घर में सिर्फ़ दो नन्हें बच्चे थे। यदि शमशेर से पहले जन्मी बहन भी ज़िंदा होती तो ये तीन होते। अब पिता ही माँ भी थे। कहा इन्होंने — "तुम एक बार मुझे माँ और एक बार बाबूजी कह लेना।" फिर भी भला माँ की पूर्ति दुनिया में कौन कर सकता है! तो, मन का यह कोमल कोना सदा ख़ाली रहा ... । पिता ने बाद में दो-दो सौतेली माँएँ दीं, और भी स्त्रियाँ घर में आईं, परंतु इससे क्या होता है? वे औपचारिक-सी उपस्थितियाँ भर थीं।

शमशेर के पिता बाबू तारीफ़ सिंह उनके जन्म के समय गोरखपुर (उ. प्र.) की पड़रौना तहसील में अहलमद (सहायक कर्मचारी) थे। शमशेर के शब्दों में 'पिताजी बहुत कम बोलते थे, यानी घर में आपस में। उनका रोब था काफ़ी। डील डौल— बड़ा हृष्ट-पुष्ट शरीर उनका था। पहलवानी का उनको शौक़ था शुरू में।' एक कविता में वे कहते हैं—

'योग का बल मेरे पिता का यौवन' *(कहीं बहुत दूर से... 63)*

वे बड़े परिश्रमी थे। एकबार उन्होंने ऐसे ही मुस्कराकर शमशेर को अपनी तर्जनी दिखाई कि "देख"— 'क़लम को पकड़े-पकड़े लिखते-लिखते वो उँगली कुछ मुड़ गई थी आगे से।' शमशेर ने उन्हें अपने मुँह से अपनी बड़ाई करते या डींग हाँकते 'किंचित मात्र' भी नहीं सुना था। इसे अपने व्यक्तित्व में महसूसते हुए वे कहते हैं— 'मित्र भी है और अच्छा काम कर रहा है, मैंने अपनी ज़बान से तारीफ़ बहुत कम की।' उदाहरण देते हुए वे मित्रों और गुरुजनों, जैसे पंत, निराला पर लिखी अपनी दो टूक समीक्षाओं का ज़िक्र करते हैं।

पिता की चर्चा करते हुए शमशेर कहते हैं— 'शाम को कचहरी से लौट कर खाना-वाना खाकर उनका (पिताजी का) हुक़्क़ा तैयार किया जाता था और वो हुक़्क़ा गुड़गुड़ाते बैठ जाते थे, मोढ़े पर आराम से। और मुझसे और मेरे छोटे भाई से पहाड़े सुनते थे। अगर ग़लती हुई तो उसी हुक़्क़े की निगाली हाथ पर पड़ती थी।' शमशेर पिता से काफ़ी सहमे रहते, जबकि तेज बहादुर ज़्यादा फ़िक्र नहीं करते थे। आगे वे कहते हैं— 'ख़ूबसूरत बात क्या थी— एक दिन तो पहाड़े सुनते थे और अगले दिन वो कोई बड़ी लम्बी कथा, कोई अफ़साना, कोई बहुत

दिलचस्प, जो कई दिनों में ख़त्म हो, ऐसी दास्तान सुनाते थे और इतना अच्छा सुनाते थे कि मैं आपसे बयान नहीं कर सकता।' सब क़िस्से, पात्र, घटनाएँ उनको हू-ब-हू ज़बानी याद रहती थीं। शमशेर ने पिताजी से ही महाभारत की कथा, रामायण, अलिफ़ लैला, चंद्रकांता संतति, भूतनाथ आदि सुने थे। शमशेर कहते हैं कि— 'दास्तानों की रोमानियत का ही नतीजा है कि मैं कविता की तरफ़ आया।' बच्चों ने जब थोड़ा होश सम्भाला तो कुछ गंभीर पुस्तकें, बहुत सी पत्र-पत्रिकाएँ घर में मँगवाई जाती थीं। उनके घर सुधा, माधुरी, सरस्वती, मस्ताना जोगी आदि हिन्दी-उर्दू की पत्रिकाएँ नियमित आती थीं। पिताजी 'बहार आफ़िस' और 'गंगा पुस्तकमाला' के मेम्बर थे। वहाँ से जो नई पुस्तक छपती थी, आ जाती थी। शमशेर को पढ़ने का बेहद शौक़ था। उन्होंने इन पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं में हिन्दी-उर्दू के अनेक कवि पढ़े। चौथी क्लास में ही उन्होंने *'जयद्रथ वध'* पढ़ लिया था। निराला का *'तुलसीदास'* उन्होंने पहले पहल 'सुधा' में पढ़ा। हाली, श्रीधर पाठक, मतिराम ग्रंथावली आदि इसी काल में पढ़े। तेज बहादुर बताते हैं कि उन्हें पढ़ने का इतना शौक़ था कि वे हाथ ख़र्च के पैसे से कबाड़ी की दूकान से पुस्तकें ख़रीद लाते। पिता के स्वभाव, विचार और कार्यशैली आदि की झलक देते हुए शमशेर ने एक रोचक घटना बताई— जब वे 'गवर्नमेंट हाई स्कूल में चौथे दर्जे में पढ़ते थे तो उनकी एक किताब खो गई थी। जब मिली तो कहा— यह किताब मेरी है। तो टीचर ने कहा— क्या पहचान? मैंने कहा मेरा नाम ए. बी. एस. लिखा हुआ है। उन्होंने कहा— अच्छा काग़ज़ पर लिखो।' शमशेर ने लिखा तो अंग्रेज़ी का 'S' हू-ब-हू नहीं बना तो उन्होंने कहा, यह किताब आपकी नहीं है।' घर आने पर पिताजी को बताया। पिताजी ने कहा— 'जिस स्कूल में इंसाफ़ नहीं होता, उसमें पढ़ना बेकार है। वहाँ से हटा दिया। फिर एक नेशनल स्कूल था, वहाँ भर्ती कर दिया।' ज़ाहिर है कि पिताजी बच्चों में अच्छे संस्कार डालने की, उन्हें अच्छा परिवेश देने की कितनी चिंता करते थे। पिताजी के स्वभाव के बारे में शमशेर कहते हैं कि— 'सीधा-सादा स्वभाव था उनका। बहुत सीधा स्वभाव। वैसे भी जाट सीधे ही होते हैं— किसान होने के बायस।' उन्होंने जोड़ा 'हर किसान सीधा होता है। छल-छंद बिलकुल नहीं था।' शमशेर के स्वभाव में भी जो बेहद सीधापन था वह शायद उन्हें पिता से या सीधी-सादी किसान जाट क़ौम से मिला था। नरेश मेहता ने एक बार मज़ाक में कहा था कि, 'तुमने जाट क़ौम को लजा दिया। कहीं से जाट दिखते ही नहीं '— यानी अक्खड़। बहरहाल शमशेर के बेहद सीधेपन के कई किस्से हैं। इलाहाबाद में कोई भी उनके घर आता और खा-पीकर चला जाता। एक बार एक साहब आए और ठंड में उनका एकमात्र गरम कोट पहनकर चलते बने— यह कहकर कि वे जल्दी लौट आएँगे। ज़ाहिर है फिर वे कभी नहीं लौटे। एक बार शमशेर ने भाई को अपने पत्र में लिखा था कि वे दूकान पर से कुछ ख़रीद कर हिसाब

करवा रहे थे, तो पता चला कि उनकी जेब से सारे पैसे यानी 'पाँच-पाँच के दो और एक-एक के तीन नोट' किसी ने निकाल लिए। अमृतराय बताते हैं कि 'इलाहाबाद में एक बार वे अपनी धुन में सायकल पर चले जा रहे थे तो ऊँट की टाँगों के नीचे से निकल गए।' अमृत राय खिलखिलाते हुए कहते हैं कि यह लतीफ़ा नहीं हक़ीक़त है। तेज बहादुर ने लिखा है कि इसी 'सीधेपन की वजह से लोग उनको बनाते रहे, ठगते रहे' और अंत तक। शायद वे कबीर के इस कथन के उदाहरण थे—

' कबिरा आप ठगाइए और न ठगिए कोय ।
आप ठगै सुख ऊपजै और ठगे दुख होय ॥'

जब शमशेर 'प्रेमचंद सृजन पीठ' के अध्यक्ष होकर उज्जैन गए तो वह नगर उन्हें इसलिए भी पसंद आया कि वह 'सीधे-सादे लोगों की जगह है।'

हाँ, तो पिता द्वारा दिए जा रहे संस्कार की चर्चा चल रही थी। वे चाहते थे कि बच्चे पढ़ें-लिखें तो खूब, लेकिन अपनी परंपरा, अपना धर्म न भूलें। शमशेर और तेज बहादुर को 'एम. पी. मिशन हाई स्कूल' में भर्ती किया गया। लेकिन जब पिताजी ने देखा कि बच्चों का झुकाव ईसाइयत की ओर हो रहा है तो उन्होंने उन्हें उस स्कूल से निकाल कर डी.ए.वी. कॉलेज में भर्ती करा दिया था, जहाँ रोज़ शाम को हवन होता था। परंतु शमशेर मिशन स्कूल को भी पसंद करते थे क्योंकि वहाँ उन्हें अरब-इस्राइल वग़ैरह का, एक संस्कृति का परिचय मिला। हिन्दू धर्म के अलावा दूसरे धर्म का परिचय मिला। यह एक छोटी-सी मिसाल है कवि की जन्मजात उदारता, जिज्ञासा और ग्रहणशीलता की।

शमशेर ने पिताजी द्वारा नौकरी से दो साल की छुट्टी लेकर दूकान खोलने का ज़िक्र बड़े रोचक ढंग से किया और इस संदर्भ में भी अपना विचार और अभिरुचि प्रकट की है। पिताजी ने मामा राजाराम जी के साथ देहरादून में दवाई की दूकान खोली थी, दूकान का नाम था 'राजाराम शमशेर बहादुर' कुछ महीनों में वह इस तरह की दूकानों में सबसे बड़ी बन गई। 'क्यों? हर चीज़ असली, हर चीज़ वहाँ साफ़ सुथरी ताजा .. इसका भी मुझ पर प्रभाव पड़ा कि अगर असली चीज़ रखी जाती है, उसके ग्राहक कम नहीं हैं, बहुत ज़्यादा हैं।' कविता में असलियत और सच्चाई की खोज में क्या यह संस्कार काम नहीं आया होगा? शमशेर ने अपने पिता की इस मामले में प्रशंसा की है कि उन्होंने कभी कुछ भी पढ़ने से मना नहीं किया। कभी नहीं कहा यह पढ़ो, वह पढ़ो। अगर ऐसा होता तो हमारा कविता का जो शौक़ था, वह ख़त्म हो जाता, बिलकुल ख़त्म हो जाता। परन्तु पिताजी चुपचाप —बग़ैर एक शब्द बोले— उन संस्कारों का बीज न जाने क्या सोच कर

डाल रहे थे, जो कम से कम मैं समझता हूँ— मेरे विकास में— और मेरे भाई के, 'बहुत काम की बातें सिद्ध हुईं।' यों इस लाभदायी संस्कार का लाभ उठाने में स्वयं शमशेर की अपनी भूमिका भी कम नहीं थी, क्योंकि, जहाँ पिताजी ने कुछ भी पढ़ने-लिखने में रुकावट नहीं डाली, वहीं वे शमशेर के द्वारा कविता या शायरी करने से नाराज़ रहते थे। शायद वे बच्चों में पढ़ने का शौक़ जीवन में सफल होने के लिए पैदा कर रहे थे— कवि बनने के लिए क़तई नहीं। शमशेर द्वारा बताई एक घटना में इसकी झलक मिलती है— 'एक मर्तबा हाई स्कूल का इम्तहान था उसमें कुछ मैथेमेटिक्स का पर्चा ख़राब हुआ तो छोड़ दिया— उनकी (पिताजी की) ज़बान से यही निकला कि— 'वहाँ शेर कह रहे होंगे। वहाँ शायरी चल रही होगी।' यह व्यंग्य और उसके भीतर छिपा क्रोध शमशेर को चुभ गया। बला का तीखापन उनके अहसासों में था। उन्होंने 'सारी कविताएँ लिखी थीं, फाड़ दीं।' शायद पिताजी का ख़याल था कि कविता व्यावहारिक जीवन और शिक्षा के रास्ते में रोड़ा है। तेज बहादुर ने इस सम्बन्ध में जिस घटना का बयान किया है, वह ज़्यादा तल्ख़ है। शमशेर को कविता का शौक़ शुरू से था। माँ का निधन हो चुका था। वे अपने घर में कवि और शायर दोस्तों को बुलाकर मुशायरा, गोष्ठियाँ आदि किया करते थे। यह बात किन्हीं पं. छैल बिहारी ने पिताजी से नमक मिर्च लगा कर कह दी। तो पिताजी आग बबूला हो गए। बुलाकर डाँटा— 'क्यों बे शायरी करता है? शायर बनेगा गधे! शायर सब भूखे मरते हैं, तू भी फटेहाल रहेगा।' इस शाप के बाद शमशेर ने अपनी कविताओं को गली में ले जाकर जला डाला— हालाँकि वे शापित तब भी रहे— पिताजी को जब इस बात के बारे में सौतेली माँ ने बताया तो उन्हें पश्चाताप हुआ। फिर उन्होंने यदा-कदा स्वयं उन्हें प्रोत्साहन भी दिया। परंतु वे चाहते थे कि बच्चों को जो शिक्षा और ज्ञान का वातावरण दिया जा रहा है उससे वे कोई बड़ा ओहदा पाएँ न कि कवि बनकर बर्बाद हों। दुनिया में कई बड़े लेखकों के साथ यह हुआ है। टी. एस. एलियट के पिता भी उनके कवि बनने से असहमत थे और चाहते थे कि पी-एच.डी. करके सामान्य जीवन व्यतीत करे। बहरहाल।

यों प्रत्यक्षत: बच्चों को स्वतंत्र राह चुनने के मार्ग में आमतौर पर पिता ने बाधा नहीं पहुँचाई। आज़ादी के संग्राम के समय जब शमशेर नेताओं की सभा में जाते या उनसे प्रभावित होते थे, तब भी उन्होंने उन्हें इस काम से रोका नहीं, सिर्फ़ अपनी सीमाएँ बताईं— 'हम सरकारी नौकर हैं, जिनका राज होगा उनकी हम उसी तरह से ख़िदमत करेंगे, उसी तरह से हम उसके प्रति वफ़ादार रहेंगे जिस तरह हमें अपने काम में रहना चाहिए।' साफ़ है कि वे एक ख़ास तरह के अनुशासन का पालन करते थे और शायद वैसा ही सुझाव दे रहे थे, जिसे शमशेर उनके स्तर पर भले तर्कसंगत मानते हों, परंतु अपने लिए उन्होंने उल्टा मार्ग चुना। उसी

दिन से उन्होंने फ़ैसला किया कि 'मैं सरकारी नौकरी नहीं करूँगा' और उन्होंने नहीं की।

यद्यपि शमशेर ने पिता के उजले पक्ष और उजले संस्कारों का ही उल्लेख किया है, (क्योंकि यही उन्होंने ग्रहण भी किया था) परंतु सबसे कटु अनुभव भी उन्हें पिता के संदर्भ में ही हुए। तेज बहादुर चौधरी ने 'मेरे बड़े भाई शमशेर जी' में पिता से संबंधित कुछ ऐसे दर्दनाक प्रसंग दिए हैं जिनका उल्लेख कवि के स्वाधीन और विद्रोही व्यक्तित्व तथा जीवन के आधारभूत मूल्यों में उनकी अपनी आस्था के प्रतीक हैं। सच कहें तो इन्हें जाने बिना शमशेर के व्यक्तित्व का अधूरा आकलन ही होगा। अगर शमशेर ने इनका उल्लेख नहीं किया तो सम्भवत: इसलिए कि इनमें पिता एक प्रसंग भर थे, मुख्य थे स्वयं शमशेर और उनकी आत्म-रचना; कि वे अपने आपको कैसा बनाना चाहते थे— जो आमतौर पर पिता या पितृ परंपरा से भिन्न था। शायद इन प्रसंगों के उद्घाटन से आत्म-प्रशंसा और पितृ निंदा होती। ये दोनों ही शमशेर के स्वभाव नहीं थे। जब ये प्रसंग दूसरे के द्वारा प्रकाश में आए हैं, तो इससे शमशेर के व्यक्तित्व का उदात्त पक्ष अधिक सार्थकता से प्रकट हुआ है।

विवाह के मामले में बाबू तारीफ़ सिंह और शमशेर बिलकुल दशरथ-राम की तरह थे। पिता ने कई स्त्रियाँ कीं, परंतु शमशेर की पत्नी के निधन के बाद जब पिता ने उनके सामने एक आकर्षक विवाह का प्रस्ताव रखा तो शमशेर ने बड़े साहस और दृढ़ता से उसे अस्वीकार कर दिया— तब पिता बुलंदशहर में सजातीय डिप्टी कलेक्टर के मातहत थे। उन्होंने शमशेर से अपनी बेटी के विवाह का प्रस्ताव पिता के सामने रखा और कहा कि मैं उसे डिप्टी कलेक्टरी में निकलवा दूँगा, बाद में वह कलेक्टर भी बन जाएगा। पिताजी के विचार में यह नायाब मौक़ा था। उन्होंने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। घर आकर शमशेर को ख़ुशी-ख़ुशी इसकी सूचना दी और इस विवाह के लाभ भी बताए। हैरत, शमशेर ने साफ़-साफ़ इन्कार कर दिया। विवाह न करने के बारे में उनका तर्क अत्यंत मानवीय और नारी जाति के प्रति उनके सच्चे सम्मान का सूचक था। उन्होंने कहा 'देखिए पिताजी, अगर कहीं मैं उसके पहले मर जाता तो मेरी पत्नी उम्र भर मेरे नाम पर विधवा बैठी रहती। अब चूँकि वह पहले मर गई, मेरा अंत:करण यही कहता है कि मैं उसके नाम पर विधुर के रूप में उम्र भर बैठा रहूँ। इसी में मुझे शांति और उसके प्रति फ़र्ज अदायगी का संतोष मिलेगा।' पिताजी को यह तर्क अटपटा और शायद मूर्खतापूर्ण लगा था। शमशेर ने न सिर्फ़ विवाह से, बल्कि डिप्टी कलेक्टरी से भी इन्कार जताया— 'मेरे बस की डिप्टी कलेक्टरी नहीं है। मुझे सच का झूठ और झूठ का सच करना ही नहीं। मुझमें डिप्टी कलेक्टरी शोभा नहीं देगी, न होगी।' उन्होंने

अत्यंत क्रोध में शमशेर को नालायक़ वग़ैरह कहा और घर से निकल जाने तक को कह दिया— 'तेरा मेरा आज से वास्ता ख़त्म।'— पिता ने यह बात सिर्फ़ क्रोध में कही थी, परंतु सचमुच दूसरे दिन दफ़्तर से उनके आने से पहले ही शमशेर ने दरी में बिस्तर, किताबें लपेटीं और विमाता के रोकने पर भी घर से निकल पड़े और फिर मुड़कर न घर की ओर देखा न कभी जीते जी पिता का मुँह। यह एक तरह से शहर में उनका वनवास ही था। इसकी चर्चा बाद में।

तेज बहादुर द्वारा वर्णित दूसरा प्रसंग 'असत्य' बोलने के अपराध स्वरूप स्वयं को दण्डित करने का अप्रतिम उदाहरण है। पिताजी देहरादून में कलेक्टर के पेशकार थे। उनके एक परिचित बनिये की दूकान से चोरी के कपड़े बरामद हुए। उस पर मुकदमा चला। बनिया पिताजी के सामने गिड़गिड़ाया तो उन्होंने एक रास्ता बताया कि अगर कोई यह गवाही दे दे कि कपड़े मेरे सामने ख़रीदे गए तो वह बच सकता है। बनिये की गवाही कौन देता? तो बाबूजी (शमशेर और तेज बहादुर पिताजी को इसी नाम से पुकारते थे) ने उसे आश्वासन दिया कि वे गवाही शमशेर से दिलवा देंगे। शमशेर यह जानकर बहुत परेशान हुए। एक ओर पिता जी की आज्ञा, वचन और दूसरी ओर असत्य! ख़ैर, उन्होंने तीव्र अंतर्द्वन्द्व झेलते हुए पिता की आज्ञा और मान की रक्षा की। पिता के वचन की रक्षा के लिए असीम कष्ट झेलने के उदाहरणों से भारतीय मिथक भरे पड़े हैं। परंतु यह बीसवीं शती की घटना है। ईश्वर को हाज़िर नाज़िर करके ली गई सच बोलने की शपथ के बाद धकियाए हुए-से उन्होंने गवाही दी— 'हाँ, इसने मेरे सामने कपड़े खरीदे थे।' केस डिसमिस हो गया, लेकिन कचहरी से लौटते हुए शमशेर 'पुरस्कार' (जयशंकर प्रसाद) की मधूलिका की तरह भीतर के अंधड़ से विचलित हो उठे। जिस जीभ ने झूठ बोला उसे ही काट फेंकने को उतारू हो गए। उन्होंने जीभ को दाँतों के बीच रखकर नीचे से ठोड़ी में कस कर टुड्डी मारी। ज़ुबान आधी कट गई जिसने झूठ बोला था। ख़ून का फव्वारा छूट पड़ा। वे खाट पर निढाल पड़ गए। यह जानकर पिताजी को स्वयं भी घोर पश्चात्ताप हुआ। लेकिन मुख्य है शमशेर का यह सच्चा आत्म-दंड जो सत्य से प्रतिबद्धता का कोई सतयुगी मिथक लगता है। इसलिए शमशेर कला में सच्चाई पर जब बार-बार ज़ोर देते हैं— तो लगता है यह सच्चाई उनकी कमाई हुई है।

केवल ये दो प्रसंग ही इस बात का साक्ष्य देने के लिए पर्याप्त हैं कि शमशेर में नम्रता, कोमलता, सरलता आदि के बावजूद अद्‌भुत नैतिक साहस, विवेक, स्वाभिमान और सत्यनिष्ठा थी। ऊपर से वे चाहे जैसे सुकुमार-सुकुमार, झुके-झुके, चुप्पे से, खोए हुए, भोले और भावुक लगते हों लेकिन भीतर से वैसे कच्चे और आत्मनिर्णयहीन नहीं थे। उनमें प्रतिरोध का दुर्दम्य संकल्प था और यह भी कि इसका उन्हें अभिमान नहीं था, इसलिए इससे उत्पन्न उजड्डता उनमें नहीं थी।

दुख ही जीवन की कथा रही

'निराला' शमशेर के आदर्श कवि थे। संयोगवश शमशेर ने निराला जैसी ही नियति पाई थी। विधुर जीवन और आर्थिक संकट। दोनों ने सरकारी या दरबारी नौकरी नहीं की, दोनों अपने संकल्प और निष्ठा में अविचल रहे, दोनों ने लगभग वीरानी और बीमारी में मौत पाई, दोनों ने गद्य और पद्य में अनेक प्रयोग किए, दोनों स्वाभिमानी, दोनों कर्तव्यनिष्ठ और मेहमान नवाज़। परंतु निराला के व्यक्तित्व में भव्यता और उदात्तता थी, उनके ऊर्जस्वित व्यक्तित्व और कवित्व की धाक बेजोड़ थी। सर्जनात्मक क्षमता में वे जीवित किंवदन्ती थे। शमशेर को अपने संघर्ष और सर्जना की भीतरी धार के बावजूद यह सब नसीब नहीं हुआ और थोड़ा बहुत हुआ तो बहुत बाद में। निराला ने कभी किसी को यह कहने का साहस नहीं करने दिया कि वे न होते तो निराला न होते, जबकि एक सीमित वर्ग ने शमशेर के उत्तर या अंतिम काल में यह श्रेय लेने की कोशिश की और वह सफल भी हुआ। ओछी बैसाखियों ने निराला के पास फटकने की हिम्मत नहीं की। वे आगामी पीढ़ी के लिए जाज्वल्यमान ज्योति पिंड थे, जबकि शमशेर जीवन भर अण्डरटोन रहे, हालाँकि उनका गहरा मूल्यांकन देर-सवेर हुआ जो हिन्दी आलोचना का एक मानदंड साबित हुआ।

यहाँ निराला से उनकी तुलना करना मेरा उद्देश्य नहीं है। सिर्फ़ यह कि चरम अपरिग्रह, ग़रीबी, संघर्षशीलता और अनूठे कवित्व के बावजूद शमशेर निराला जैसे किंवदन्ती पुरुष न हो सके। उसके बुनियादी और अंतर्कारण हैं। फिर भी शमशेर के लिए निराला ही आदर्श रहे। जब अंतिम समय में मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री के निर्देश और आग्रह पर अहमदाबाद में उनका विशेष उपचार प्रारंभ हुआ और उन्हें सामान्य वार्ड से प्रायवेट वार्ड में भरती करने की पहल की गई तो उन्होंने अपनी नाराज़ी जताई। इस समय भी उनके सामने निराला द्वारा विशेष चिकित्सा के लिए किया इन्कार उदाहरण स्वरूप रहा। उन्होंने तेज से कहा— 'मुझे अच्छा नहीं लगा। जनरल वार्ड में सामान्य रोगियों से हटाकर मुझे यहाँ लाया गया... बीमारी तो ग़रीब-अमीर, छोटे-बड़े की नहीं होती। तुम्हें मालूम है, निराला के यहाँ गए थे, उन्होंने भी अस्पताल में जाकर अपनी विशेष जाँच कराने का अनुरोध हठपूर्वक अस्वीकार कर दिया था।'... निराला को अपना आदर्श माननेवाले शमशेर जब ये पंक्तियाँ लिखते हैं तो इनमें सचाई है :

'भूल कर जब राह— जब जब राह... भटका मैं/
तुम्हीं झलके, हे महाकवि/
सघनतम की आँख बन मेरे लिए।' *(कुछ कविताएँ)*

यों, शमशेर लगभग पूरे जीवन ही लौकिक अर्थ में अभागे रहे। जन्मते ही संकटों ने उनका पीछा करना शुरू कर दिया था। जब वे सिर्फ़ डेढ़-दो साल के

रहे होंगे, तभी उनके जीवन की त्रासदी शुरू हो गई थी। जब पिता गोंडा में नौकरी कर रहे थे और माँ साल-डेढ़ साल के शमशेर को लेकर वहाँ गई थी, तो बारिश की एक रात जिस कमरे में शमशेर को सुलाकर माँ थोड़ी देर के लिए हटीं, तभी उस कमरे की कच्ची मिट्टी की दीवारें बरसात के कारण ढह गईं। चारों ओर अँधेरा था, बिजली भी तब नहीं थी, कंदील भी खोजने पर मिल नहीं रहीा थी, सब परेशान थे, थाने में ख़बर की गई, लोग आए, सब मिलकर रात भर मलबा हटाने की कोशिश करते रहे। हर कोई यह मान बैठा था कि बच्चा मलवे में दब गया है। दैव योग से बच्चा जहाँ सोया था, वहाँ दीवार का एक हिस्सा कमरे की ईंस ने थाम रखा था। सुबह बच्चे को सुरक्षित सोया देखकर सबकी साँस में साँस आई। यमुना की उत्ताल तरंगों से बचाकर लाया गया कृष्ण मानो ऐसी कपाल-रेखा लिखा कर लाया था कि जीवन भर संकट उसके आसपास मँडराते रहेंगे और वह उनसे जूझते हुए मृत्यु के द्वार पर भी बाँसुरी बजाता रहेगा—

मेरी बाँसुरी है एक नाव की पतवार—
जिसके स्वर गीले हो गए हैं। *(टूटी हुई बखरी हुई/कुछ और कविताएं)*

शमशेर का बचपन और किशोरावस्था मुख्य रूप से देहरादून और गोंडा में बीती। शेष जीवन वे इलाहाबाद, बनारस, मुंबई, दिल्ली, उज्जैन, सुरेन्द्र नगर में रहे या भटकते रहे। बारबार अपने सूनेपन को प्रायोजित परिवारों की आत्मीयता से भरते रहे और जीवन के अधिकांश भाग में शब्दश: ग़रीबी और दरिद्रता से जूझते रहे।

गोंडा से मैट्रिक पास करने के एक साल बाद 1929 में शमशेर का विवाह धर्मदेवी से हुआ। 1931 में उन्होंने इंटरमीडिएट किया और 1933 में इलाहाबाद से बी.ए.। इसके बाद उनके दो साल पत्नी की तीमारदारी में बीते।

शमशेर की पत्नी धर्मदेवी देहरादून के ठीक-ठाक आर्थिक स्थिति वाले परिवार की लड़की थीं। वे पितृहीन थीं। विधवा माँ और मामा शमशेर सिंह ने उनका पालन-पोषण किया था। विवाह के तीन-चार साल बाद ही वे क्षय ग्रस्त हो गईं। शिमला के 'साधुराम तुलाराम गोयनका मारवाड़ी सेनीटोरियम' में उनका इलाज कराना तय किया गया। पत्नी को लेकर शमशेर गए। ऊँची इमारत के नीचे के तल्ले में उन्हें तीन मीटर लंबा और तीन मीटर चौड़ा कमरा मिला। शमशेर बराबर पत्नी के साथ उसी कमरे में रहे। खाट भी एक ही था। भाई तेज बहादुर ने भी उसी सेनीटोरियम में कम्पाउण्डर के रूप में अपनी नियुक्ति करा ली थी। वे उसी इमारत के ऊपरी तल्ले में रहे। शमशेर कभी ऊपर नहीं गए। क्योंकि भाई को अपने संपर्क से बचाना चाहते थे, ताकि उसे छूत का रोग न लग जाए। जब भाई ने पूछा कि उनका क्या होगा? तो उन्होंने कहा— 'मेरा ऊपर वाला रक्षक है, मुझे चिंता नहीं खैर, अपने से बेख़बर हुए बिना क्षय रोगी की ऐसी सेवा और कोई नहीं कर सकता

था, शायद माँ और मामा भी नहीं। इस सेवा का जो ब्योरा मिलता है वह हृदय हिला देता है। त्रिलोचन ने ठीक कहा है कि 'कोई और पत्नी की ऐसी सेवा नहीं कर सकता जैसी उन्होंने की।' स्थिति सुधरती न पाकर 'नानावती सेनीटोरियम' में उन्हें ले जाया गया। यहाँ कमरे नहीं थे, टेण्ट और छोलदारियाँ थीं। टेण्ट में धर्मदेवी को दो रोगियों के साथ रखा गया। शमशेर यहीं भूखे प्यासे रहकर सेवा करते रहे। लेकिन अपने प्राणों की ज़ोखिम उठाकर की गई सेवाओं के बावज़ूद धर्मदेवी नहीं बचाई जा सकीं। 1935 में वहीं उनकी मृत्यु हो गई। शव को लावारिस हालत में छोड़कर तीन किलोमीटर पैदल चलकर आए भाई को सूचना देने के लिए। भाई ने पूछा— 'क्या बात है भाभी कैसी हैं?' शमशेर— 'वह बिलकुल ठीक हो गई' और भाई से '*लिपटकर एक दो बार रोने की आवाज़ निकाली।*' इसी समय से शमशेर दोबारा अकेले हो गए। बचपन में माँ और यौवन में पत्नी खो देने से बड़ा अपघात किसी भी व्यक्ति और ख़ासकर एक संवेदनशील व्यक्ति के लिए क्या होगा? अनंत वेदना-स्मृति के अलावा अब उनके पास कुछ नहीं बचा था—

'मुझे भूल से....वर
केवल अपनी
याद बनाकर
चले गए-से
क्यों?' *(कहीं बहुत दूर से... पृ. 21)*

पत्नी-सेवा उनके पत्नी-अनुराग की ही नहीं , समस्त स्त्री जाति के प्रति उनके सम्मान, प्रेम और कर्तव्यशीलता की प्रतीक थी। शमशेर भले ही जीवन में नारी विहीन रहे हों, परंतु परिवार की स्त्रियों को उनसे सदा सुरक्षा और सम्मान मिला। चाहे वे विमाताएँ हों, भाई की रखैल हो या और कोई स्त्री। मुंबई के कम्यून में देखभाल करने वाली महिला कल्याणी बाई सैयद पर तो शमशेर की एक प्यारी-सी कविता है— 'माई' जिसमें उन्हें 'गहन छायाएँ लिए तरु', 'साँझ का कोमल अपनात्व' 'करुण-सागर का हृदय' कहा गया है। वृद्धावस्था का मार्मिक प्रसंग शमशेर के गोंडा जाने पर अपनी अत्यंत बूढ़ी नौकरानी 'दिल्लिआइन' से मिलने का है : 'मैं तुम्हारा शमशेर हूँ माँ' और बिलखने लगे। उसे याद आया 'ओ बाबूजी के समसेर' 'हाँ' उन्होंने उसके चरण छूने चाहे। दिल्लिआइन अपने को सँभालकर ज़मीन पर बैठ गई और अपने आँचल से अपने आँसुओं को पोंछती पोंछती बोली— 'कहाँ हब... और बाबूजी और छोटा?' 'बाबूजी मर गए। तेजसिंह नौकरी पर है।' 'बाल-बच्चा?' 'बहू मर गई, कोई बच्चा नहीं हुआ। अकेला हूँ फिर शादी नहीं हुई, न मैंने की।' 'चाय दूध लाऊँ?' 'ना तकलीफ न कर मैया। मैं तो तुम्हारे दर्शन से ही तृप्त हो गया।' यह स्नेह और कर्तव्य स्त्री तक ही नहीं रहा, मित्रों, पाठकों

और संसार तक फैला। इस तरह उन्होंने 'निजी' को 'सामान्यीकृत' कर लिया था, जो कविता की सही और सार्थक दिशा है— निजी को सामान्य और सामान्य को निजी बनाना। ख़ैर, माँ और पत्नी उनके लिए जीवन की स्मृति भी रहीं और काव्य-प्रतीक भी। इसका एक कारण यह भी है कि वास्तविक जीवन में फिर कोई स्त्री शायद ही इसकी प्रतिपूर्ति इतनी गहराई से कर सकी; वह 'चंदरोज़ा' स्त्री भी नहीं जो कि उनके जीवन में आई थी और चली भी गई। पत्नी के प्रति अगाध प्रेम और एकांत समर्पण की एक उत्तर कथा है— 'देहरादून में (शमशेर) उस कमरे में गए, जहाँ वे रहती थीं। उनकी कापियाँ उठाकर देखीं। एक उठाकर माथे पर लगाई और यादगार के रूप में अपने पास रख ली।' आदर और स्नेह देने का, शमशेर का यही आहिस्ता सम्हाल और कोमल छुअन का तरीक़ा था- ख़ामोश मगर उँगलियों से बोलता-सा। सन् 1939 में पिता की मृत्यु का तार पाकर दाहकर्म के बाद वे श्मशान पहुँचे तो 'अस्थियों में से छोटे से एक टुकड़े को उठाया और उसे माथे से लगाकर फिर धीरे से झुक कर उसे वहीं रख दिया।' सारे कोमल संवेदों को शमशेर कविता में ऐसे ही आहिस्ते से छूते थे।

पत्नी के निधन के बाद लड़की और डिप्टी कलेक्टरी से जुड़वाँ विवाह के अस्वीकार की घटना और उसके बाद गृह-त्याग का उल्लेख हो चुका है। यहीं से एक तरह से उनकी साहित्य-यात्रा के चरम कष्टों की शुरूआत होती है।

घर से निकलकर शमशेर सीधे दिल्ली पहुँचे। जाते समय विमाता ने 200 रु. दिए थे। दिल्ली में शीशगंज गुरुद्वारा में शरण ली, अवधि से अधिक रहने के एवज़ में झाड़ू लगाना पड़ा। पिताजी को दफ़्तर से आने के बाद जब शमशेर के घर छोड़ने का पता चला तो बहुत दुखी और आहत मन से चाचा रामकिशन सिंह को ढूँढ़ने भेजा। योगायोग से चाचा शीशगंज गुरुद्वारे में ही पहुँचे। हज़ार मिन्नतें करने पर भी शमशेर नहीं लौटे। चाचा से पता लगने पर पिताजी स्वयं भी दिल्ली आए, तब तक शमशेर गुरुद्वारा छोड़ चुके थे। मुठभेड़ के बाद की, पिता-पुत्र की यह अंतिम संभावित मुलाक़ात भी टल गई। बात यह हुई कि अधिक दिन न टिक पाने की चिंता के दौर में शमशेर को एक ताँगेवाला मिल गया था। अकेला था। उन्हें अपने घर ले गया। एक कमरे का घर था जहाँ घोड़े का कुछ सामान, दाना-पानी, कुछ लगाम-रस्सियाँ भी थीं। शमशेर किसी पर बोझ बनने से घबराते थे; तो, ताँगेवाले ने अपनी सिफ़ारिश पर उन्हें एक 'जाट धर्मशाला' में कुछ दिन के लिए एक कमरा दिला दिया। इसी 'धर्मशाला' में शमशेर की क़ायदे की गृहस्थी शुरू हुई— 'छोटी अँगीठी, कोयले, चावल, नमक, दाल, मसाले, चाकू, ताला, चादर ओढ़ने की और दो-एक कपड़े ख़रीदे।' यहीं से तेज को लिखे पत्र में शमशेर ने पहली बार स्पष्ट रूप से जीवन के उद्देश्य की घोषणा की :

प्रिय तेज,

ख़ुश रहो!

मैंने घर छोड़ दिया और अपनी किस्मत ले के दिल्ली आ गया हूँ। यहाँ मिठाई के पुल के पास एक जाट धर्मशाला में पड़ा हूँ। मैनेजर की मेहरबानी से कुछ दिन रह सकूँगा। अब मेरे लिए मेरी जोजा (पत्नी), माँ, बहन, भाई, बाप, यार-दोस्त जो भी है वह सब अदब (साहित्य) ही है, उसी के लिए अब जीना मरना है। साहित्य की राह से अब डिगना नहीं है।

संकल्प भरे इसी पत्र में आर्थिक स्थिति भी बयान की गई है :

मेरे पास अब केवल चार दिनों लायक चावल, दाल, आटा, कोयले रह गए हैं। पैसे लगभग समाप्त हो चुके हैं। अगर जल्दी प्रबंध नहीं हो सका तो भूखे रहने की नौबत भी आ सकती है। तुम्हारी भाभी के कुछ ज़ेवर मेरे पास हैं। उनमें से दो-एक बेचकर मुझे कुछ रक़म जल्दी भेज देना, मैं प्रतीक्षा करूँगा। मुझे अपने परिवार में अब तुमसे ही कुछ सहानुभूति की आशा है, भाई हो इसलिए इतना लिख गया हूँ। मेरा पता है— शमशेर बहादुर सिंह, बुलंदशहर वाले, द्वारा/ मैनेजर, जाट धर्मशाला, मिठाई का पुल, दिल्ली।

तुम्हारा भय्या,
शमशेर बहादुर

इसके बाद शमशेर को अलग कमरा किराए पर लेकर रहना पड़ा। यहाँ उनके साथ एक मंदरासी युवक मेनन भी रहने लगा। कुछ दिनों बाद वह सारा सामान लेकर चंपत हो गया। 1935-36 में शमशेर 'उकील स्कूल ऑफ़ फ़ाइन आर्ट्स' में निःशुल्क प्रवेश पा चुके थे। इस वक़्त उनका लिबास देखें— 'पाजामा फटा हुआ, दाढ़ी बढ़ी हुई, सर के बाल बढ़े हुए, कुर्ता कुछ मैला-मैला, कहीं-कहीं पर रंग या स्याही के धब्बों, हाथ में काग़ज़ का एक पुलिंदा-सा लिए...।' और खाना— 'एक थाली में चोकर की रोटी रखी थी, दूसरे एक मिट्टी के गड्डुए में थोड़े चने भीगे हुए थे।' हालत जानकर मामाससुर आए। बिना कुछ पूछे कार में बिठा कर ले गए। देहरादून में शमशेर के ठाठ यों थे— 'यहाँ खाने-पीने का आराम है। केमिस्ट की दूक़ान पर बैठना पड़ता है। कोई बंदिश नहीं, नए कपड़े बनावा दिए गए हैं' परंतु फिर दोस्तों को चाय वग़ैरह पिलाने पर सास की तरफ से टोका-टोकी होने लगी। ऊब गए। ससुर के कैंसर की जाँच के सिलसिले में मुंबई आए। यहीं 'कम्यून' से संपर्क हुआ, अच्छा लगा। देहरादून लौटने के कुछ दिनों के बाद वे, सास के बहुत रोकने पर भी मुंबई चले आए। जिस शमशेर ने मन टूटने पर पिता से नाता तोड़ लिया था, भला वे सास या किसी की क्या सुनते? हालाँकि उन्होंने काफ़ी नम्रता से सास को कुछ दिलासा-विलासा दिया। ससुराल भी छूटा तो छूटा। नरम नरम से दिखने वाले कवि का फ़ैसला काफ़ी मुकम्मिल

हुआ करता था। इस दौर में वे कम्यून में ज़्यादा नहीं रहे। इलाहाबाद आ गए। यहीं उन्होंने 1938 में एम.ए. (पूर्वार्द्ध) किया। अकादमिक शिक्षा का यह पूर्ण विराम था। 1939 में पिता की मृत्यु हो गई। 1939 में वे पंत जी के 'रूपाभ' में कार्यालय-सहायक के रूप में रहे। यहाँ उन्होंने जी-जान से काम किया। 1940 में वे बनारस चले आए, यहीं त्रिलोचन के साथ *'कहानी'* का संपादन किया। त्रिलोचन से उनकी यह मित्रता और वैचारिक आदान-प्रदान आजीवन रहा। 1941-42 में उन्होंने बनारस में रामेश्वरी गर्ल्स कॉलेज में अध्यापकी भी की। 1945-46 में पुन: मुंबई के कम्यून में रहकर *'नया साहित्य'* का संपादन किया। इसी दौर में उन पर मार्क्सवाद का प्रभाव पड़ा। 1948 से 54 तक फिर से इलाहाबाद में *'माया'* के सहायक संपादक रहे और *'नया पथ'* तथा *'मनोहर कहानियाँ'* के संपादन विभाग में भी रहे, पर कहीं टिके नहीं। नौकरी करते-छोड़ते रहे, क्योंकि वे 'किसी के बँधुआ होकर नहीं रह सकते थे।' लेखन और अध्ययन में भी लगे रहे। और आर्थिक संकट, अभाव और दरिद्रता झेलते हुए भी अपनी शर्तों पर जिए।

बी. ए. पास करने तक शमशेर इलाहाबाद में बोर्डिंग हाउस के कमरा नं. 127 में रहे थे। दुबारा इलाहाबाद आने पर शुरू में वे मॉडल टाउन में एक कमरा किराए पर लेकर रहे बाद में बहादुरगंज में रामचंद्र सोनी के मकान में रहे। यह मकान जी. टी. रोड पर था। तेज बहादुर के शब्दों में— 'नीचे के हिस्से में एक ख़ाँ साहब की 'जस्ट फिट' दुकान थी उसके ऊपर भय्या का मकान 'जस्ट फिट' ही था।' एक कमरा 8 फीट लंबा 8 फीट चौड़ा, उसी में एक पाँच फीट ऊँचा, तीन-चार फीट चौड़ा कार्निस, छोटा-सा अध्ययन कक्ष। ऊपर एक 8' × 5' का कमरा, आगे खुली जगह— यही घर शमशेर का वर्षों तक, यानी दिल्ली जाने के पहले तक 'स्थायी निवास' रहा।

जब तब शमशेर तेज बहादुर को लिखते रहे— 'दोनों कमीज़ें पीछे से फट चुकी हैं, तुम्हारी दी हुई अचकन ऊपर से पहन कर बाहर जाता हूँ।' ...और ऐसी ही बातें। पं. सुंदरलाल त्रिवेदी जो शमशेर के घर रुके थे ने बताया 'गद्दे का कपड़ा फट चुका था, उसका कपड़ा उतार दिया गया था, मात्र रूई भर रह गई थी। उसे चारपाई पर बिछाया (बिना अपमानित या अपनी असमर्थता छिपाए)। उसी रुई पर चादर डालकर बैठने को कहा— 'यही मेरे पास है।' पड़ोसी सरदार जी बताते हैं— 'कभी कच्ची सब्ज़ी खाकर रह जाते हैं। कभी बाज़ार से सत्तू लाकर नमक या शक्कर में घोलकर भरपेट पी लेते हैं। कभी स्वयं बनाकर।' कभी उनके ऐश भी रहते थे, एक बार तेज बहादुर को लिखा— 'मैंने ख़ास काम इधर किया है, दूध अच्छी तरह लिया है, उसमें आसानी भी थी कि उधार मिल गया। मगर एक तरफ़ खाने-पीने की और चीज़ें नहीं ले सका, या बेहद कम मात्रा में ली जा सकीं, और दूसरी तरफ़ क़र्ज़ भी घटा। ... हरीन्द्र मिश्र 20 दिन रहे, रसद वग़ैरह का

ख़र्चा वे ही करते थे। विद्यार्थी जी से भी 14 रुपया उधार लाया था, ख़ुद मालिक मकान से 10 रु. क़र्ज़ लिए थे, जब चमन सिंह (तेज बहादुर के दामाद) यकायक आ गए थे और मेरे पास एक हव्वा (पैसे का टुकड़ा) नहीं था।' एक बार पत्र में लिखे घर के 'कच्चे चिट्ठे' का जायज़ा लें—

'दशहरे के त्यौहार में मेरा यहाँ क़तई जी नहीं लगा। त्यौहार जैसे मालूम नहीं हुआ। मैं चार पाँच दिन को हैरम्ब मिश्र के साथ बनारस भाग जाना चाहता था। यहाँ से नज़दीक बनारस ही पड़ता है। मगर नहीं जा सका। बड़ी कोफ़्त सी रही। ख़ैर, त्यौहार किसी तरह ख़त्म हुआ। हाँ तुम कुकर चाँद अभी न भिजवाओ, कोयले से काम चल ही जाता है। सबसे पहले दो काम करने हैं— एक तो गद्दे और रजाई के लिए खोल सिलवाने हैं। रुई तो काफ़ी है, जाड़ों के बाकी कपड़े भी हैं। दूसरे, जिन लोगों का देना है उनका पैसा आगे के दो महीनों में अदा करना है, जिनमें सबसे पहले दूधवाले का है। अढाई महीने से ऊपर का है। फिर मास्टर साहब (टेलर मास्टर) का जो उन्होंने बिजली के हिसाब में मेरी तरफ़ से लगातार कई महीनों तक दिया है। क़रीब 35 रु. वह हैं। तुमने जो 60 रु. भेजे थे, उनमें से किराया और दस रु. क़र्ज़, 35 अदा किया और कुछ छोटे-मोटे क़र्ज़ चुकाए। हाँ विद्यार्थी जी का भी जल्दी देना है। वह ख़ुद ग़रीब आदमी हैं। बहुत ज़रूरत के मौक़े पर उन्होंने दे दिया था। बहरहाल किराया भी दो महीने का बाक़ी है। धीरे-धीरे दे सकते हैं। तुम ख़ुद अंदाज़ लगाकर आसानी से जितना भेज सकते हो, भेजो। एक महीने में कुछ एडीटरों से भी थोड़ा पैसा मुझे मिल जाएगा। ऐसी उम्मीद है। यह हुआ यहाँ का मेरा कच्चा चिट्ठा?'...

शमशेर को बचपन से ही पेंटिंग का शौक़ था, हाई स्कूल से ही। वे स्कूली पत्रिकाओं के मुख पृष्ठ बनाया करते थे। उनके मामा दर्शन सिंह जी पेंटर थे। माँ की चाहत थी कि शमशेर पेंटर बनें। अंत तक भी शमशेर इस द्वन्द्व में रहे कि कविता लिखें या पेंटिंग करें। इलाहाबाद में वे कविता और गद्य लेखन के बीच-बीच में पेंटिंग करते रहे। 'उन चित्रों में ज़्यादातर चित्र प्रकृति के ऐसे रेखा चित्र थे, जिनसे कवि की प्रकृति के प्रति विशेष रुचि और आकर्षण का भास होता था, उनमें भी उन प्राकृतिक दृश्यों का रूपांकन होता था, जो साधारण दुनिया के लिए उपेक्षित और महत्त्वहीन जानी जाती थी, जैसे बबूल का फल।'

इलाहाबाद में रहते हुए शमशेर *दूसरा सप्तक* (1951) में छप चुके थे। जगत शंखधर ने उनका कविता चयन *'कुछ कविताएँ'* (1959) संपादित कर छपवा दिया था। शमशेर की साहित्य में चर्चा प्रारंभ हो गई थी। वे महसूस करते थे कि उनकी 'कविताओं को पसंद करने का रिवाज़ शुरू हो गया है' और 'इस वक़्त हिन्दी की दुनिया में मुझसे बहुत कुछ आशाएँ जोड़ी जा रही हैं। मुझे अक्सर लगता

है कि मैं उन्हें पूरा करने योग्य नहीं। बहुत कुछ समझना है और कुछ काम की चीज़ें पाठकों को दे जानी हैं।'

फिर भी कोई व्यथा थी असह्य कि वे लिख बैठे—

...'पर मालूम नहीं क्यों मेरा दिल अंदर से बैठा जाता है।... ज़िंदगी तेज़ी से एक गहरी ढाल की तरफ़ जा रही है, ऐसा लगता है। ... बहुत-सी पेंटिंग करने का मन होता है, मगर कैसे मुमकिन है? .... मैं अपने आप से पूछता हूँ आख़िर किसलिए? और क्यों?' इस वक़्त वे हताशा से गुज़र रहे थे— 'पेंटिंग करके भी क्या करेगा? हो गया काम जो होना था। काफ़ी थक लिए। और कब तक इस तरह की बेचारगी की ज़िंदगी जिएँगे?' यह भी सच है कि अब तक शमशेर लगातार ख़ूब पढ़ते-लिखते रहे थे, दुनिया भर का साहित्य। पत्र-पत्रिकाओं में भी ख़ूब मेहनत की थी, पर उन्हें क्या मिला? यह चीज़ आदमी को तोड़ देती है। परंतु वे इस टूटन से अपने बल पर बार-बार उबरते रहे।

1965 में उन्हें दिल्ली में एक नौकरीनुमा चीज़ मिल गई। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का *'हिन्दी-उर्दू कोश'* का प्रोजेक्ट दिल्ली विश्वविद्यालय को मिला था। शमशेर को उसमें हिन्दी सम्पादक बनाया गया। 1965 में वे स्थायी रूप से इलाहाबाद छोड़कर दिल्ली में बस गए। दिल्ली जाते समय, इलाहाबाद में उनके घर का आख़री मुआयना भी हो जाय (तेज बहादुर जी ने जैसा देखा):

> 'छत पर कोयले के चूरे की कालिमा फ़र्श पर फैली है। दो-चार बर्तन माँजे पड़े हैं, सब तरफ़ एक फटी चादर रस्सी पर लटकी है। .... कमरे में आलमारी में कुछ किताबें, शेविंग का सामान, फटे से बिछाने के कपड़े और एक फटा सा लिहाफ़। तकिया... जिसका गिलाफ़ मैला हो गया था। फ़र्श पर दो-चार बर्तन, डिब्बों में दाल, चावल,आटा, नमक, हल्दी, घी, तेल नहीं था....'

यह उस व्यक्ति के जीवन और रहन-सहन का चित्र है जो ऐसे 54 सार्थक वर्ष बिता चुका था, जिनके बल पर उसे वैदुष्य और कविता के क्षेत्र में गरिमामय स्थान मिला था। वह अपने समय के सबसे प्रसिद्ध कविता संकलन 'दूसरा सप्तक' के मात्र 7 कवियों के बीच एक विरल कवि के रूप में पहचाना जा चुका था, उसके वे दोनों कविता संग्रह (कुछ कविताएँ, कुछ और कविताएँ) प्रकाशित हो चुके थे, जो आज भी उसकी प्रतिष्ठा का सर्वोच्च मानक हैं। वह कई पत्र-पत्रिकाओं का संपादक और हिन्दी गद्य के विशिष्ट लेखक के रूप में मान्य हो चुका था। उसके घर की ऊपर लिखी कथा क्या कह रही है? इसे निराला के शब्दों में आप 'हिन्दी का प्रेमोपहार' कह सकते हैं। इसे शमशेर सौभाग्य की तरह ही लेते थे—

> 'दरिद्रता में दुख की बात होती है यही कि जो आदमी चाहता है, वह धन के अभाव में प्राप्त नहीं कर सकता। फिर भी दरिद्रता में, ग़रीबी में

आदमी को सब्र संतोष हो तो कोई दुख नहीं होगा, बल्कि धनवान बनने पर यह प्रवृत्ति रहती है— जिमि प्रतिलाभ लाभ अधिकाई 'धनवान को शांति-संतोष नहीं होता।'

वे कबीर का यह पद याद रखते हैं—

'कहत कबीर सुनो भाई साधो, मानुष सुखी मन जीते हो।'

वे यह भी कहते थे—

'जेहि विधि राखे साइयाँ तेहि विधि रहनो होय'

'जैसे राखे राम तेसेई रहिए मना मेरे।'

ग़रीबी ने शमशेर को आत्म बल और संवेदना दी। वे कहते हैं : 'मुझे ग़रीबी ने आत्म बल दिया,हर एक के अंदर छिपा हुआ दर्द पहचानने की दृष्टि दी और जिस प्रकार मैं ग़रीबी में सुखी या दुखी रहा हूँ, उसी प्रकार दूसरे के दुख दर्द को पहचानने की योग्यता दी। ग़रीबी में मन को ज़बरदस्ती मारा जाता है। सहन शक्ति बढ़ती है। कालांतर में फिर वही अनमोल स्वभाव बन कर रह जाता है। यह ज़रूर है कि ग़रीबी में आदमी अमीर बनने के लिए अपना ईमान, धर्म न बेचे, उसकी रक्षा करे।'

ऐसी बातें भले ही भाई से निजी बातचीत में कही हों, परंतु उनके लेखन में, भाषण में, साक्षात्कार में कहीं ग़रीबी का उल्लेख नहीं है, यहाँ तक कि कविता तक में कहीं भी इसकी प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति नहीं है। एक जगह वे अनजाने, परोक्ष रूप से स्वीकार भी करते हैं :

कविताएँ
एक ब्लैंक हैं
जिसमें
कवि तक नहीं
न कोई जूतों के निशान छूटे हुए
न चाय के धब्बे घरेलू
न पुरानी साड़ी के चीकट कर्टेन *(दो बातें/ चुका भी हूँ मैं)*

कभी भी उन्होंने पिता या अन्यों की किसी तरह की निंदा नहीं की। वे संबंधों के बेहतर पक्ष का ही स्मरण रखते हुए, बाक़ी बातें इस तरह भूले रहे, मानो हुई ही न हों। इसके विपरीत वे अपनी त्रुटियों और कमज़ोरियों का हमेशा स्मरण करते रहे। साहित्य और जीवन दोनों की। इसी ने उन्हें बड़ा कवि बनाया और अपने विषाद और दर्द के सहारे दुनिया के दुख-दर्द को समझने वाला बड़ा इंसान।

1965 से 1977 तक शमशेर दिल्ली विश्वविद्यालय के उक्त योतना से जुड़े रहे। दिल्ली में वे 1980 तक रहे। यहाँ पहले वे मॉडल टाउन में कमरा लेकर रहे। बाद में अन्यत्र। वहाँ उनके साथ मलयज की बहन शोभा और उसके पति

अजय सिंह रहते रहे और शमशेर थे घर के बुजुर्ग, पर बहुत सुहाते हुए। अजय सिंह ने अपने लेख में इस ओर इशारा किया है। शोभा पर तो शमशेर ने एक कविता भी लिखी थी।

1981 में शमशेर को म. प्र. शासन द्वारा उज्जैन में स्थापित प्रेमचंद सृजन पीठ का निदेशक मनोनीत किया गया यहाँ वे 1985 तक रहे।

शमशेर को उज्जैन बहुत रास आया। क्योंकि 'बहुत चालाक लोगों के बीच रहने से; उनका जी घबराता था। किसी से कोई ईर्ष्या, लालच, किसी की बुराई करना आदि प्रवृत्तियों से ग्रसित न हों, ऐसे लोगों में उनका मन रमता था— वे दिल्ली से जो आए थे!

उज्जैन में शमशेर से पहले-पहल प्रत्यक्ष मिला। उस समय उनकी बैठक में एक खाट या तख़्त था और एक कुर्सी, जिसका हत्था टूटा हुआ था। शमशेर ने बड़े आग्रह से मुझ जैसे नए लेखक को कुर्सी पर बिठाया, ख़ुद खाट पर बैठकर बातें कीं। इस बीच उन्होंने संस्कृत न पढ़ पाने का रंज प्रकट किया और उज्जैन में संस्कृत का जो वातावरण था, उसके बारे में ख़ुशी ज़ाहिर की। यहाँ वे फिर से सामाजिक विषयों पर लिखने की ओर भी वे प्रवृत्त हुए।

1984 के बाद वे अपने पर शोध करने वाली छात्रा रंजना अरगड़े के साथ सुरेन्द्र नगर गए, जहाँ रंजना का पोस्टिंग हुआ था।

1987 में मध्य प्रदेश शासन का मैथिलीशरण गुप्त सम्मान और 1989-90 में 'कबीर सम्मान' मिला।

1986-87 से ही वे बीमार चल रहे थे। 90 के बाद उनकी हालत ज़्यादा ख़राब रही। अंतिम कुछ वर्षों तक बीमारी भोगते हुए 1993 की 12 मई को उनका अहमदाबाद में निधन हो गया और हिन्दी के इस अनूठे कवि और नायाब इन्सान का पार्थिव स्वरूप हमारे बीच नहीं रहा। अब वह था :

'सर्वोच्च लहर
आकाश गंगा में
आकाश गंगा में
विसर्जित
एक दीया।' *(शमशेर की अंतिम कविता, 13 जून 1992)*

तेज बहादुर ने उनके गुणों के बारे में ठीक कहा है कि वे 'आसाधारण सहनशीलता, सत्य के आवरण से सुरक्षित, झूठ से कोसों दूर, अत्यंत भावुक, निश्छल हृदय धारी, कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी अडिग और विपदा दुर्दिनों को हँसते-हँसते सह जाने वाले व्यक्ति थे। अपने स्वजनों, परिचित व्यक्ति के लिए साधारण सीधे स्वभाव के व्यक्ति' थे और उन्हें 'अपने बारे में गुणगान से बहुत नफ़रत थी।' इतने बड़े कवि होने पर भी वे बहुत नम्र थे यहाँ तक कि कवि होने तक का उन्हें गर्व नहीं था।

2

शमशेर को समझना

तेरे स्वर का स्वर कितने पास अपने

यों, शमशेर ने सहज कविताएँ भी लिखी हैं— ख़ास कर विचार और विचारधारा की कविताएँ, कुछ मार्मिक प्रसंग, मृत्यु गीत, ग़जलें आदि। परंतु उनकी अधिकांश गहरी और अर्थपूर्ण कविताएँ, जो उनके कवि का प्रतिनिधित्व करती हैं, पाठक को अक्सर जटिल लगती हैं। शमशेर कला को कलाकार के अपने व्यक्तित्व की अंतरात्मा (Inner soul of the personality) के अन्वेषण का माध्यम मानते हैं। इसे वे साहित्य साधना का मार्ग कहते हैं। तो ज़ाहिर है कि पाठक को भी कविता का मर्म पाने के लिए कलाकार की उस आंतरिक खोज (Discovery) तक जाना होगा। अन्यथा कविता उसके लिए दुर्बोध होगी।

शमशेर में वस्तु और भाव को अपनी मूल अंतरंगता में पाने की अन्वेषण-प्रवृत्ति रही है। दूसरा सप्तक के वक्तव्य में वे कहते हैं :

> 'अपनी कविताओं में मेरी ख़ास कोशिश यह रही है कि हर चीज़ की, हर भावना की जो अपनी भाषा होती है, जिसमें वह कलाकार से बात करती है, उसको सीखूँ।.... कविता में हम अपनी भावना की सच्चाई खोजते हैं। उस खोज में उस सच्चाई का अपना ख़ास रूप भी हमें मिलना चाहिए, जिस हद तक भी मुमकिन हो।..... जीवन की सच्चाई और सौन्दर्य को अपनी कला में सजीव से सजीव रूप देते जाना, इसी को मैं साधना समझता हूँ'

नतीजतन पाठक द्वारा भी कवि की उस भाषा को समझना होता है, जिसमें चीज़ें उससे बात करती हैं और यह भाषा कला की है— ख़ास तौर से शमशेर के संदर्भ में। क्योंकि उनकी कविता में शिल्प अत्यंत महत्त्वपूर्ण है यह स्वयं बार-बार कहते हैं। अर्थात् शमशेर की काव्यात्मा तक पहुँचने के लिए शिल्प को बेधना ज़रूरी

है जो उनकी कविताओं का प्रवेश द्वार ही नहीं, अंतरंग भाग है। इसके बाद कविता खुलती जाती है और उसी परिमाण में पाठक का मन भी खोलती जाती है। परंतु यही सबसे कठिन काम है। क्योंकि शमशेर के शिल्प का रहस्य अभ्यस्त प्रणाली में नहीं है; स्वत: अन्वेपित सत्य में है। उनकी कविता आपसे बहुत कम बोलती है, मगर कहती बहुत अधिक है। उनके शिल्प की प्रवृत्ति छलाँग लगाने की है, जिसमें बीच-बीच की भूमियाँ छूटती जाती हैं और इसी में उनकी कविता का मूल अभिप्राय छिपा होता है। इस अंतराल को पाटने को माँग भावयित्री प्रतिभा से बहुत कठिन माँग है, मानो पाठक से स्वयं कवि होने को कहा जा रहा हो। शमशेर के बिम्ब और प्रतीक भी या तो स्व-रचित हैं या पुनर्रचित। प्रारंभ में तो उन्हें भी गुत्थी की तरह सुलझाना होता है जो सिर्फ़ शास्त्रीय प्रणाली या सामान्य भाषिक अर्थबोध से नहीं सुलझती बल्कि इसके लिए सृजनात्मक चेतना, जीवनानुभव, स्मृत्यनुभव, कलानुभूति और बहुत से रचनात्मक उपादानों का सहारा लेना होता है। ज़ाहिर है कि कवि की इस अन्वेषित भाषा और शिल्प में चीज़ों से बात करना पहले पहल तो पाठक को हैरानी में ही डालता है।

दूसरी दिक्कत यह है कि शमशेर की कविताओं का कोई निश्चित शिल्प या पैटर्न नहीं है। उनकी कविता से ही अर्जित शिल्प की प्रणाली से बार-बार विचलन का सामना करना होता है। क्योंकि कवि हर पल प्रयोगधर्मी है। वह अक्सर चित्रों में सोचता है जो कई बार स्वयं अमूर्त होते हैं और कविता में स्थानांतरित होकर और भी अमूर्त तथा सूक्ष्म हो जाते हैं।

शमशेर विचारों और काव्य-प्रवृत्तियों की भी बहुमुखी अनवरत यात्राएँ करते हैं। इस यात्रा का ब्योरा यदि उन्हीं से लिया जाए तो काफ़ी विषमता और अन्तर्विरोध दिखाई देंगे। यथार्थवाद-अतियथार्थवाद; प्रतीकवाद-प्रभाववाद, शिल्पवाद-छायावाद, अद्वैतवाद-मार्क्सवाद ही नहीं; समय-समय पर वे भिन्न रुचियों, प्रवृत्तियों और विचारों के रचनाकारों से प्रभावित होने का खुला ऐलान करते हैं। सामान्य रूप से तो यह बात लोगों को हैरत में डालती है कि एक ही अनुच्छेद में वे 'मार्क्सवादी मॉडल' अपनाने की बात भी करते हैं और रोमानियत को अपनी असली ज़मीन बताते हैं और रहस्यवाद से प्रभावित होना भी स्वीकार करते हैं। 1980 में प्रकाशित 'उदिता' में वे कहते हैं :

> 'उस ज़माने में (1941 से 47 के बीच) मैंने अपनी घोर वैयक्तिक अतार्किक भावुकता, रोमानी आदर्शवाद आदि से रचनात्मक संघर्ष शुरू कर दिया था, और मार्क्सवादी मॉडल प्रबल रूप से मुझे अपनी ओर खींच रहे थे। उर्दू कविता का शानदार प्रगतिशील उभार भी प्रभावित कर रहा था। धीरे-धीरे, मगर काफ़ी धीरे-धीरे कुछ परिवर्तन आया। पर मेरी असली ज़मीन तो रोमानी ही थी, रोमानी ही बनी रही; जिसमें इक़बाल और शैली का, अरविंद निराला

और रवीन्द्रनाथ के छायावादी या रहस्यवादी अद्वैत की छाया भी कहीं न कहीं शामिल थी।'

एक ओर तो यह, और दूसरी ओर वे अपने कवि की स्वतंत्रता की उद्घोषणा 'कुछ और कविताएँ' की भूमिका में इन शब्दों में करते हैं :

'मेरे कवि ने कभी किसी फ़ॉर्म, शैली या विषय का सीमा-बंधन स्वीकार नहीं किया। फ़ैशन किन विषयों पर लिखने का है या किस वाद का युग आ गया है या चला गया है, मैंने कभी इसकी परवा नहीं की। जिस विषय पर जिस ढंग से लिखना मुझे रुचा, मन जिस रूप में भी रमा, भावनाओं ने उसे अपना लिया; अभिव्यक्ति अपनी ओर से सच्ची हो, यही मात्र मेरी कोशिश रही— उसके रास्ते में किसी भी बाहरी आग्रह और आरोप या अवरोध को मैंने सहन नहीं किया।'

'उदिता' के 1980 संस्करण में भी वे दो बातें एक साथ लिखते हैं : 'मेरा स्वर सच्चा रहे, बस इतनी ही मेरी चिंता थी; और मुझे किसी से कुछ लेना-देना नहीं था (न है।), परंतु साथ ही वे प्रगतिशील आंदोलनों को 'आज की ज़िंदगी की सच्ची परख का आन्दोलन भी मानते हैं।'

यह विचित्र बात है कि एक ओर मार्क्सवाद की वकालत और दूसरी ओर किसी से कोई लेना-देना न होने की बात। एक ओर वामपंथी आग्रह और दूसरी ओर रोमानियत को अपनी असली भूमि कहने की बात! एक ओर किसी वाद के युग आने-जाने की पर्वाह न होने की घोषणा, दूसरी ओर 'आज की ज़िंदगी' की सच्ची परख वाले प्रगतिशील आन्दोलन का समर्थन। फिर भी 1947-48 तक जो प्रगतिशील कविताएँ लिखी गईं उन्हें अपने प्रथम दो प्रतिनिधि संकलनों *'कुछ कविताएँ' 'कुछ और कविताएँ'* में न के बराबर शामिल करना अंतर्विरोध नहीं तो क्या है? यह बात अलग है कि जैसे 41 से 47 के बीच वे अपनी 'निजी अतार्किक भावुकता' से मार्क्सवाद के सहारे उबरे थे, उसे उन्होंने अपने में समाकर नई-नई दिशाओं की तलाश की और कलाकार के 'आत्मान्वेषण' पर बल दिया जो किसी हद तक उनके भीतर विकसित होते कलाकार की सूचना देता है। अपने गद्य में वे मार्क्सवाद का बराबर समर्थन करते रहे। भले ही गाँधी की 50वीं बरसी पर उन्होंने 'प्रेम की पाती' जैसी सर्वजन हिताय और व्यापक प्रेमभाव की कविता लिखी, जो वर्गीय भावना से परे थी। परे तो 'अमन का राग' जैसी अत्यंत प्रसिद्ध कविता भी है जिसमें उन्होंने अनेक मानवतावादी और रोमानी कवि कलाकारों का उल्लेख किया है जिनका वर्गवादी सोच से कोई संबंध नहीं है।

ये चीज़ें पाठक और आलोचक को परेशानी में डालती हैं। पर इस पूरे मामले पर अलग ढंग से विचार किया जाना चाहिए क्योंकि अपने स्वर की सच्चाई तलाशने के लिए की गई ये बहुमुखी यात्राएँ हैं और काफ़ी हद तक निर्भय स्वतंत्रता

का उद्घोष और समय तथा सर्जना की पहचान की उत्कटता भी। लगता है कि अपनी सर्जना पर शमशेर को अगाध विश्वास था। इसलिए भले ही उन्होंने किसी की रुचि-अरुचि, दबाव या सैद्धांतिक कटघरों की पर्वाह न की हो लेकिन यह कहना या मानना युक्ति संगत नहीं होगा कि एक कलाकर समय-समय पर जिन चीज़ों से गुज़रता है या प्रभावित होता है उनका उसकी कला से कोई संबंध नहीं होता। परंतु कलाकार मात्र 'प्रभावों का पुंज' नहीं होता, जैसा शमशेर ने स्वयं कहा है। कलाकार में ये प्रभाव छन कर, कई बार क्षरित होकर, उसके व्यक्तित्व के अनुरूप ढलकर मौलिक अर्थवत्ता प्राप्त कर लेते हैं; दूसरी ओर उसकी सर्जक प्रतिभा अपने आभ्यंतरिक प्रयोगों के लिए भी सदैव खुली रहती है। प्रभाव और मौलिकता का यही अभ्यंतर संबन्ध है। उदाहरण के लिए मार्क्सवादी प्रभावों को लेकर शमशेर के बारे में काफ़ी बहस हुई है। लेकिन उनकी अधिकांश महत्त्वपूर्ण कविताओं में, ये प्रभाव दिखाई नहीं देते बल्कि वे रूमानी मूड के कवि ही लगते हैं। वे लिखते हैं कि 'मैं केवल मात्र आइडियालॉजी से सोशल रहा।' इतना ही नहीं, आलोचना में छपे मेरे एक लेख पर, उन्होंने अपने पत्र में मुझे लिखा था :

> 'आपका यह वाक्य तो सही नहीं है कि मैं सक्रिय रूप से कम्यूनिस्ट पार्टी से जुड़ा रहा हूँ। 49-50 तक सक्रियता का कुछ संबंध रह ख़ैर, ऐसा होता तो कविता में देश की राजनीतिक और सामाजिक हलचलों के ठोस यानी कांक्रीट और फ़ोर्सफुल चित्र उभरते। वैसा नहीं हुआ है। कभी-कभार ही अपवाद स्वरूप कुछ ठोस चित्र प्रस्तुत हो सके हैं।'

यदि कोई चाहे तो ऐसे कथनों का यह अर्थ भी निकाल सकता है कि उनमें स्वीकार और अस्वीकार का विचित्र दोहरापन अथवा विरोधाभास है। परंतु हमने जीवन के संदर्भ में भी देखा है कि शमशेर एक सच्चे इंसान थे। इसलिए अगर उन्होंने यह सब कहा है तो उसे अभिधार्थ में लेना उन जैसे सूक्ष्म और व्यंजक कवि के प्रति अन्याय होगा। असल में उनके भीतर वैसा सोशल कान्शसनेस नहीं था, जैसा उस समय की या बाद की प्रगतिशील कविताओं में सतह पर दिखाई पड़ता है। इस तरह की कविताएँ प्राय: रेह्टरिक, विस्तार बहुल, मुखर पद्धति से लिखी जाती रही हैं। शमशेर भी सामाजिक दायित्व के पक्ष में 'उत्कृष्ट रेह्टरिक या महान छंदोबद्ध कविता' के क़ायल थे। परंतु उनका कवि सामाजिक अभिव्यक्ति को 'प्रथमत: पुष्ट गद्य और सक्षम वक्तृता' का क्षेत्र मानता है जिसका समावेश (रेह्टरिक में) छंदोबद्धता के साथ हो जाता है। इसके विपरीत शमशेर की काव्यात्मा सूक्ष्म, गहरी और अंतर्मुखी है; उनमें एक स्वप्नदर्शी क़िस्म की अन्वेषिता है। स्वभावत: वे समाज-चेता कवियों जैसी मुखरता की अक्षमता अपने में महसूस करते हैं। वरना उन्होंने जो जीवन जिया है वह सामाजिक यथार्थ की दिशा में ही ले जाता है। उनका लगभग तीन चौथाई जीवन सर्वहारा का जीवन था— नियति और स्थिति

दोनों ओर से।

एक जगह अपनी कविता के बारे में या अपने कवि-व्यक्तित्व के बारे में कही गई उनकी बात उस तथ्य का उद्घाटन करेगी जो अक्सर सतही अंतर्विरोध देखने वालों की निगाह से चूक जाता है। वे कहते हैं—

> 'अगर मेरी वाणी में इंसान का दर्द है— छोटा-सा ही दर्द सही, मगर सच्चा दर्द ...भावुकता, ललक, आकांक्षा, तड़प और आशा, कभी घोर रूप से निराशा भी लिए हुए, कभी उदासी, कभी-कभी उल्लास भी... एक प्रेमी कवि-कलाकार, एक मध्यमवर्गीय भावुक नागरिक का, जो मार्क्सवाद से रोशनी भी ले रहा है और ऊर्जा के स्रोत भी (अपनी सीमा में अपनी शक्ति भर) तलाश कर रहा है। एक ऐसा व्यक्ति जिसको सभी देशों और सभी धर्मों और सभी भाषाओं और साहित्यों से प्यार है और सबसे अपने दिल को जोड़ता है(प्रेम की भावुकता ने जो बीज बोया वह मैं देखता हूँ कि अकारथ नहीं गया; क्योंकि पूरी मनुष्य जाति से प्रेम, युद्ध से नफ़रत और शांति की समस्याओं से दिलचस्पी— ये सब बातें उसी से धीरे-धीरे मेरे अंदर पैदा हुईं...) तो उपर्युक्त तमाम सूत्रों से मैं इन्सान के साथ जुड़ता हूँ, तो मेरे लिए फिलहाल इतना ही काफी है।' *('यह संस्करण' (1980)/ उदिता)*

क्या यह कम है उस सोशल कांशसनेस के लिए जिसे हम बिला वजह एक कटघरे में रख कर समझ रहे हैं? शमशेर की कविताओं का अध्ययन करते हुए हम देखेंगे कि ये सारे तत्त्व उनकी कविताओं में बहुत सूक्ष्म पिराये हुए हैं— यह मानवीय पीड़ा, यह उदात्त प्रेम। इसी अर्थ में उनके भीतर के समाज को पहचानना होगा जो सारी सृष्टि में, तमाम इन्सानों के दुख दर्द से जुड़ा एक महान प्रेम-काव्य लिख रहा है।

संसार में दुखों के अनेक रूप होते हैं, दुख पहुँचाने के भी अनेक रूप होते हैं। मनुष्य को जोड़ने, उसके जख़्मों पर मरहम लगाने के भी अनेक रुप होते हैं, प्रेम के भी अनेक रूप होते हैं और उसके प्रयोग के भी अनेक रूप। शमशेर की इस व्यापक यात्रा को ग़ौर से देखें जो सारांशों को चुनते हुए समग्रता में मानवीय जीवन को कला में आविष्कृत कर रही है। अपने जीवन के सारे दुख-दर्द को कवि ने मनुष्यता के दुख-दर्द में रूपांतरित कर दिया है, और उसे वृहत्तर मानवीय तथा नैसर्गिक जीवन की गहरी कलात्मक भाषा दी है। इसी अंतर्प्रक्रिया का सहारा हमें प्रभावों, विचारों आदि की अभिव्यक्ति के बारे में भी लेना होगा— ख़ासकर वहाँ, जहाँ वे सूक्ष्म और गहन हैं। इस गुत्थी को सुलझा लेने पर कलात्मक जटिलता के बावजूद शमशेर 'धरती के छंद' की तरह खुले लगेंगे जिसके पत्तों, फलों और फूलों का स्रोत जड़ों की शिराओं में होता है।

शमशेर कहीं भी आत्मदया से ग्रस्त नहीं हैं, जो करुणा और वेदना को अपने से बाहर सृष्टि में फैला देखता है वह कभी आत्म-मोह और आत्म-दया से ग्रस्त नहीं होता। उसका मौन और उसका स्वीकार दोनों उसकी स्वतंत्र चेतना और विद्रोही चरित्र को उजागर करते हैं। जिन्होंने शमशेर को अत्यंत विनम्र, कोमल, सर्वसहा व्यक्ति के रूप में देखा है वे शायद ही उनके इस चरित्र पर विश्वास करें, लेकिन जिस पीढ़ी के सामने उनका जीवन और कविता खुलती जा रही है, वह उनकी आत्मा के सच्चे स्वर का साक्षात्कार कर सकती है— जिसने शमशेर को शमशेर बनाया है, जो है एक समृद्ध आत्म-मोह निरपेक्ष रचनावान कवि; विरल, वैविध्यधर्मी और सत्य का सतत अन्वेषी; जन-मन के दुख-दर्द का स्वयं भोक्ता; अद्वितीय निष्कलुष सौन्दर्य का पथिक और सृजन के प्रति अविचल आस्था का दृढ़ चरण।

अर्थ यह कि शमशेर किसी पैटर्न, विचार-पद्धति द्वारा कला पर प्रतिबंध के विरुद्ध विशुद्ध मानवीय कवि थे। वे न सिर्फ़ अपने ही बनाए ढाँचे बेतकल्लुफ़ी से बार-बार तोड़ते हैं; निश्चित अवधारणाओं, विषय-सीमाओं, बाहरी आग्रहों और वक़्ती मौसम की अनुकृति से भी इन्कार करते हैं। वे 'न पलटना उधर' कविता में अपनी कविता से क्षणिक चमक, वैभव, छंदबद्धता को छोड़कर विशुद्ध 'देवापगा' में स्नान करने का आग्रह करते हैं। हर बार कविता में नई वस्तु, नवानुभूति और अछूते क्षण की असमाप्त खोज उनके भीतर अंत तक जारी रही। उन्हें पढ़ते हुए पता ही नहीं चलता कि वे कब बच्चे हो जाते हैं, कब वयस्क; कब वज्रांग और कब तरल पारदर्शी; कब चित्रकार, कब संगीतकार, कब दार्शनिक, कब मार्क्सवादी, कब गाँधीवादी और कब पीड़ा में पगे हुए इन्सान या अनूठे प्रेमी। सब कुछ उनके भीतर सहज स्वाभाविक रूप में कलाकार के आत्मन्वेषण के दौरान घटित होता है।

इसे देखते हुए शमशेर के अध्ययन और विवेचन का सबसे अनैसर्गिक पक्ष यह है कि उन्हें किसी भी स्तर पर, किसी भी चीज़ से बाँधा जाए। उनका काव्य इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि वह विजड़ित पद्धति और परिबद्ध धारणा की अस्वीकृति का काव्य है और स्वाधीन आत्माभिव्यक्ति की विजय का। लेकिन शमशेर जैसे कलाकार की यह स्वाधीनता कड़े आत्मानुशासन, मानवीय विवेक, व्यापक करुणा, अविरल प्रेम, विरल सौन्दर्यान्वेषण और आंतरिक संपृक्ति का प्रतिरूप है किसी नाटकीय वाचालता का नहीं।

इस बात को ध्यान में रखकर ही उनके निकट मुक्त सस्पंद हार्दिकता से जाना होगा तभी वह विरल और दुर्लभ मिल सकता है, जो सिर्फ़ वहीं है। उस निपट संवेदनीय, अंतर्क्रिया में परिशुद्ध, सूक्ष्म, कोमल व्यंजना को बिना क्षति पहुँचाए इस कविता को आत्मसात करना होगा। किसी सपाट, स्थूल व्यवहार से उसे सिर्फ़ नष्ट ही किया जा सकता है। शमशेर की कविता चाहती है कि पाठक बँधे नहीं,

अपने को पाए उनकी कविता में। वे अपने एक निजी पत्र में मुझे लिखते हैं— 'वास्तव में मैं कभी पाठक को बाँधना नहीं चाहता, वह मेरे को पाए अपनी कविता की निजी अनुभूति में... जो कि उसकी निजी डिस्कवरी होगी... यही मेरे निकट कला की अवधारणा है। *'कुछ कविताएँ'* में संकलित एक लंबी कविता की चर्चा करना चाहूँगा जो शमशेर की इस बात को प्रमाणित करती है और उन्हें समझने का सूत्र देती है। कविता है— **'राग'** (देखें परिशिष्ट दो में पूरी कविता)

कविता का परिवेश 'शाम' है। कवि शाम से या शाम कवि से पूछती है— 'इन बातों का मतलब?' यह परस्पर जिज्ञासा फ़िलहाल वस्तु और कवि की पृथक सत्ता की ओर इशारा करती है। दोनों ही उत्तर देते हैं— 'राग अपना है।' यानी वस्तु और सर्जक दोनों का 'निजत्व' बना हुआ है। जब तक वस्तु कवि के निजत्व को या कवि 'वस्तु' के निजत्व को आत्मसात नहीं करता तब तक दोनों का एक होना संभव नहीं है। तादात्म्य की शर्त ही है— एक दूसरे के हृदय का स्वीकार या वस्तु का कलाकार से कला की भाषा में बात करना, उसी तरह वस्तु की भाषा को कलाकार द्वारा समझने का प्रयत्न करना।

अगली पंक्ति में 'शाम का आकाश' कवि की आँखों में 'स्वप्न की इच्छा' या 'तंद्रा-सा' खिंच आता है। यानी 'वस्तु' कवि की अनुभूति में बदलती है। यह वास्तव में वस्तु का सर्जक द्वारा संकल्पात्मक पुनर्सृजन है। शाम अपना 'वस्तु तत्त्व' और कवि अपनी 'चाक्षुषता' (यानी दृष्टि या अनुभूति) कल्पना को सौंपता है। वस्तु और भाव दोनों तरल होते हैं— एक-दूसरे तक यात्रा के लिए। अब दोनों का अपना अलग 'राग' नहीं है— दोनों की परस्पर समर्पिति है। वस्तु और कवि के एकाकार होने के बाद ही पाठक घटना में उपस्थित होता है, वह कवि और वस्तु की एकात्मता यानी 'सर्जना' से पूछता है— 'कब?' यहाँ पाठक भी एक स्वतंत्र व्यक्तित्व है, जैसे पहले 'शाम' और 'कवि' थे। प्रश्न या जिज्ञासा, शामिल होने की कामना तो है, परंतु पृथकता के एहसास के साथ। पाठक जानना चाहता है उस 'क्षण' के बारे में जब 'शाम. 'कविता' बनी या शाम और कवि एक हुए। यह रचना में पाठक के शामिल होने का पूर्वचरण है। वह 'सृजन-क्षण' को पकड़ना चाहता है, ताकि ऐसे 'क्षण' को अपने में महसूस करे, तभी तो वह सृजन को पा सकता है। पाठक के इस प्रश्न का इस बार अकेला कवि उत्तर नहीं देता बल्कि स्रष्टा और सृष्टि दोनों एक साथ उत्तर देते हैं— 'समय अपना राग है'। अर्थात् पाठक को यह सुझाव दिया गया है कि यह 'समय' या सृजन-क्षण अपने में उपजाओ, महसूस करो। क्योंकि जब 'राग-समय' पाठक के भीतर जन्म लेता है तभी उसे कविता का संभव होना महसूस होता है। जैसे शाम का कवि की 'आँखों की तंद्रा' में शामिल होकर कविता होना संभव हुआ था। कवि पाठक से आगे प्रश्न करता है 'तुमने धरती का पद्य पढ़ा है? वहाँ सहजता है/ तुमने अपनी यादों की पुस्तक

खोली हैं?' प्रश्न का सीधा अर्थ है कि कविता महज़ तर्क का विषय नहीं, वह धरती की तरह सहज है, वह 'स्मृति' है अपने जीवनानुभव की। याद आती हैं कालिदास की पंक्तियाँ जहाँ वे कहते हैं—

'रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुको भवति यत् सुखितोऽपि जंतुम्।
तत्चेतसा 'स्मरति' नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि।' *(अभिज्ञान शाकुंतलम्)*

सौन्दर्यानुभव और काव्यानुभव तो जन्म-जन्म की स्मृति होते हैं। यही यादों की पुस्तक है, उसमें लिखी है वह कविता जिसे प्रत्यक्ष उत्प्रेरण से पाठक को पुन: पाना है। यह कविता सहृदय की अपनी है; स्मृतियों में बसी हुई। इसी स्मृति को जगाने का क्षण कविता के हृदयंगम करने का क्षण होगा। यही कहा कवि ने पाठक से। जैसे ही पाठक की स्मृतियाँ जागती हैं, वह महसूस करता है— आँसू 'छलका नहीं', 'आकाश-पुष्प' (आकाश कुसुम नहीं) हो गया है, अर्थात् संवेदन किसी विराट् अनुभव-केन्वास में खिल उठा है। (जैसे अपना दर्द सबके दर्द में बदल जाए) पाठक की इस अनुभूति को रेखांकित करते हुए कवि कहता है— 'बस यही मेरी कविता है।' तुमने धरती की सहजता और आकाश की अनंतता में, अपनी स्मृति के सहारे जो पाया है 'आँसू का पुष्प' , 'वही' मेरी कविता है। 'आँसू' का, आकाश-पुष्प बनना, स्मृत-अनुभव का उन्मुक्त भाव-जगत में सौन्दर्य बन जाना है। जीवन की सहज करुणा और दुख को सौन्दर्यानुभूति या रसानुभूति में ही तो ढालती रही है शमशेर की कविता। करुण-स्मृति यदि आँसू में बह जाए तो वह दुखानुभव है, विराट् भावाकाश में टँक जाए तो कविता है।

पाठक को कविता की अनुभूति तो हुई लेकिन वह मस्तिष्क को आश्वस्त न कर सकी, उसके सम्मुख अभिप्राय स्पष्ट नहीं हुआ। जैसे राग न जानने वाले भी संगीत का आस्वादन या आनन्द तो लेते हैं, परंतु उन्हें पता नहीं चलता कि राग कौन-सा है? इसकी बारीकियाँ और अर्थ क्या है? इसीलिए पाठक का जिज्ञासु मन सवाल करता है— 'तुम्हारी कविताओं का मतलब क्या है?' यानी अनुभूति के बाद भी ज़रूरी है उन कारणों और अर्थों को जानना जो कविता में निहित हैं। परंतु कवि इसकी क्या व्याख्या करे? यही तो सबसे कठिन काम है उसके लिए, क्योंकि कविता की व्याख्या बाहरी उपादानों से होगी और बाहरी उपादान तो निरंतर कविता रचते हुए छीजते रहे हैं। इसलिए इन कविताओं का मतलब क्या है? पाठक के इस प्रश्न से बचने के लिए कवि भोलेपन से कह देता है— 'कुछ नहीं'। पाठक हैरत में है, पूछता है 'फिर तुम इन्हें क्यों लिखते हो?' जब तुम्हें ही अपनी कविता का अर्थ नहीं मालूम तो कविता करने के क्या मानी हैं? यह एक जिज्ञासु का बौद्धिक प्रश्न है, और अत्यंत स्वाभाविक भी है, परंतु कवि इसका उत्तर बौद्धिक स्तर पर

नहीं देता, भाव-स्तर पर देता है। वह कहता है— 'मैं कहाँ लिखता·हूँ ये लिख जाती हैं।' (मोहि तो मेरे कवित्त बनावत —घनानंद) कवि उस सहजता की बात करता है, जो स्वयं उसने आत्मसात की है। जैसे धरती का पद्य सहज है— वैसे ही कविता सहज है। क्या इन्हें समझाना होता है? लेकिन पाठक फिर अगली जिरह करता है— 'फिर इनकी रक्षा कैसे होती है?' क्योंकि रक्षा, प्रयत्न साध्य होती है, जबकि ये अबूझ सौंदर्यानुभव हैं। अर्थ के मानकीकरण या सामान्यीकरण के बिना कविता के भावों की रक्षा कैसे होगी? उसमें सम्प्रेषणीयता कैसे आएगी? प्रश्न स्वाभाविक है। क्योंकि गहन अनुभूति की अमूर्त-सी कविता के पाठक की अनुभूति और·स्मृति में सुरक्षित रहने का कोई व्यावहारिक आधार तो होना चाहिए? उत्तर देने की अपेक्षा कवि प्रतिप्रश्न करता है— 'मेरी ही रक्षा कहाँ होती है?' यहाँ कवि कविता से अपना अभिन्नत्व स्थापित करता है। क्योंकि जो बात कविता के लिए है, वही कवि के लिए है, दोनों की भौतिक, शास्त्रीय या पारिभाषिक सत्ता नहीं है। कोई ठोस व्याख्या न कविता की है, न कवि की। सौन्दर्य के नाक-नक्श भले ही हों पर उनकी समष्टि से उत्पन्न लावण्य की व्याख्या कैसे होगी? पाठक असमंजस में पड़ जाता है क्योंकि स्थूल अर्थबोध के बिना भी वह कबिता को अपने भीतर धड़कता तो अनुभव कर रहा है। वह कह उठता है— 'मेरी साँस ही तो तुम्हारी कविता है' पाठक की यह अनुभूति अब कवि और कविता के अस्तित्व से जुड़ जाती है। यदि कविता अरक्षित है तो उसकी साँस, उसके प्राण ही मानो अरक्षित रह गए! इस असुरक्षा की भावना के बावजूद पाठक 'समस्त बाह्य उपलब्धियों से परे , भीतर से कहीं कवि और कविता से लगाव महसूस कर रहा है। इस एकता को सघन-संश्लिष्ट करने के भाव से कवि उसके रहे-सहे संशय को दूर करना चाहता है। वह सुझाव देने के बहाने पाठक से प्रश्न करता है— 'इन साँसों की रक्षा कैसे होती आई है?' यानी साँसें भी अमूर्त, आंतरिक, स्वचालित और अनायास हैं। यदि इनकी रक्षा सहज रूप से किसी आंतरिक जैविक क्रिया से होती आई है तो जो कविता, 'साँस' है, उसकी रक्षा भी उसी तरह किसी आंतरिक संश्लिष्ट रचना-प्रक्रिया से होगी। यानी दरअस्ल अरक्षित कविता तो वह है जो तमाम मूर्त और स्थूल उपादानों, अर्थ-प्रक्रियाओं के बावजूद पाठक की साँस नहीं बन पाती है, उसके प्राणों में नहीं उतरती। वह कविता कैसे अरक्षित है जो पाठक की 'साँस' है। यह कथन शमशेर की रचना-प्रक्रिया का अकथित उद्घाटन है। 'साँस' अपने अंतिम रूप में कितनी जटिल और बहुस्तरीय शारीरिक क्रिया की परिणति होती है? उसमें उसका सार और परिणत निहित है। वैसे ही 'साँस' रूप में उपलब्ध कविता भी अनेक और अनेक स्तरीय रचना-प्रक्रिया से गुज़री है— तब बनी है साँस।

इसी के साथ सारे संवाद और द्वैत का फ़िलहाल समापन हो जाता है। जिज्ञासाएँ

शांत-सी हो जाती हैं। नतीजतन पाठक सीधे कविता में उतर जाता है, उसे गुनगुनाने लगता है। 'संग्रह' उसके हाथ में खो जाता है— अर्थात् हाथ में 'संग्रह' है और वह कविता में खो गया है। कविता तो वैसे यहीं सार्थक हो जाती है। परंतु अब भी पाठक की चेतना रह-रहकर अनाश्वस्त हो जाती है। वह रचना को सम्पूर्ण और अंतिम रूप से आत्मसात् नहीं कर पाता। इसलिए फिर पूछ बैठता है— 'इन शब्दों का क्या मतलब है?' हैरत है, कविता के साँस बनने से पहले भी उसने यही प्रश्न किया था! अब भी यही प्रश्न कर रहा है! शाम और कवि ने भी पूछा था परस्पर यह सवाल; लेकिन तब, जब दोनों पृथक थे। इसका अर्थ यह है कि पाठक अभी कविता में पूरी तरह तन्मय नहीं हो पाया है, परंतु उसने भावानुभूति का एक स्तर पा लिया है। वह तन्मय होने को तैयार है, परंतु संशय पूरी तरह से मिटने पर ही। यही पाठक की अन्वेषण प्रक्रिया है। यह जानते हुए भी कवि इस बार पहले वाला उत्तर नहीं दोहराता कि — 'राग अपना है।' वह अनुभव कर रहा है कि पाठक के काव्य-बोध और समझ की अपनी समस्या और सीमा है। अनुभूति और समझ में अंतर यही है कि अनुभूति के लिए अपने को विलीन करना होता है और समझ के लिए पृथक। इतना अवश्य है कि अनुभूति से जुड़कर समझने की पृथकता काव्यानुभूति का सही मार्ग है— समझ के स्तर पर विलग होकर अनुभूति के स्तर पर जुड़ना नहीं। पाठक इस सही मार्ग पर चल चुका है। उसे उस पर स्वतः चलने देना चाहिए। इसलिए कोई उत्तर न देकर कवि 'चुप' नहीं, 'मौन' हो गया है। 'चुप' होना निरुत्तर या तर्कहीन होना है, जबकि 'मौन' अर्थगर्भित होता है। मानो उसे स्वयं को अन्वेषित करने के लिए प्रेरित कर रहा हो। इसमें कविता के पाठक की 'साँस' होने का रहस्य छिपा है। परिणाम स्वरूप अब कवि भी 'मौन' है और पाठक भी 'मौन'। पाठक सिर्फ़ कवि की आँखों में देखने लगता है, जहाँ पढ़ता है उस 'मौन' को और सरलता के तंद्रिल आकाश को। अर्थात् उसी शाम के आकाश को जो कवि की आँखों में कल्पना की तरह उतरा है और कवि के ऐंद्रिय बोध से छनकर बिम्बधर्मी हो गया है। अब जाकर पाठक का सारा द्वैत समाप्त हो गया है। उसकी जिज्ञासाएँ पूरी तरह शांत हो गई हैं। वह अपनी धुँधली गोद में संग्रह खोलता है। यह धुँधलापन शाम के कारण नहीं, बल्कि शाम जैसे सुहाते वात्सल्य से कविता को प्यार करने के कारण है। गोद का सीधा अर्थ ही वात्सल्य है। अब शब्द और कविता के मतलब का द्वन्द्व समाप्त हो चुका है। कविता की रक्षा की चिंता का भी अंत हो गया है क्योंकि पाठक अब पृथक सत्ता नहीं रहा है। कविता उसकी वात्सल्यमयी साँस में समा चुकी है। वह कविता को अपने में डिस्कवर कर चुका है। अब कवि भी पाठक की पृथक-सत्ता भूल चुका है। दोनों ओर केवल परस्पर आस्वादी लय बह रही है। कवि उस विराट सृष्टि में खो गया है जहाँ छंदों के तार खिंचे थे— वीणा

के तारों की तरह। राग उसकी उँगलियों में लिपटकर थिरकने लगा। उसके अनुभव में मेघ गर्जन, मयूर, हरियाली यानी समूची सृष्टियों का सुख है। वास्तव में यह पाठक की वही अनुभूति है जिसे पाठक खोज रहा था। यहाँ रचनाकार के लिए भी सातों सृष्टियों का सुख है। सारे-भेद भाव समाप्त होकर बच गई है; केवल कविता। कविता का आस्वाद।

इस कविता में पहले वस्तु तत्त्व, काव्यानुभूति और संप्रेषण पृथक अस्तित्व थे जो बाद में एक हो गए हैं। यही कविता की उपलब्धि या आश्वासन का क्षण है।

यह कविता नाटकीय शैली में है, परंतु यहाँ पाठक, शाम या कवि कोई स्थूल नाटकीय पात्र नहीं हैं, बल्कि कवि की अनुभूति, संप्रेषण-प्रक्रिया और अंतत: कविता के आस्वाद को लेकर एकालाप है, नाटकीय आत्मालाप जिसमें पृथकता के संयोजन की एक कहानी, एक *अन्वेषण प्रक्रिया है और काव्य के उपलब्ध होने* का रहस्य है।

इस कविता को पढ़कर बरबस 'असाध्य वीणा' का ध्यान हो आता है, जहाँ कला वस्तु, कलाकर और पाठक सब प्रारंभ में भिन्न हैं, जो अंतत: विराट और विरल अनुभूति में एकतान होते हैं। लगता है कलात्मकता की पहचान अलग-अलग संदर्भ होते हुए भी एक ही काव्य-सत्य का उद्घाटन कर रही है। यह कविता शमशेर की रचना प्रक्रिया और सम्प्रेषण संबंधी सोच का संकेत भी देती है और शायद कवि को समझने का सूत्र भी।

जाहिर है कि शमशेर की कविताओं का सच इकहरा, अभ्यस्त और ठोस नहीं है— इसलिए पाठक इसे प्रारंभ में आसानी से नहीं पा सकता। परंतु कविता के भीतर उतर कर या उसे अपने भीतर उतार कर यदि पाना चाहे तो वह 'धरती के पद्य' जैसी सरल हो जाती है, कविता की दिशाएँ खुलने लगती हैं और वह भी अपना हृदय खोल देती है, जबकि शमशेर की कविता को किसी अभ्यस्त तकनीकी प्रणाली या बोध में पाने की कोशिश के वे ही परिणाम निकल सकते हैं जो निकाले गए हैं। परंतु प्रश्न यह है कि क्या कविता की सोच, अनुभूति और अभिव्यक्ति-प्रणालियों का कोई अर्थ नहीं है? क्या कविता में प्रयुक्त भाषा (रचना-प्रक्रिया) इस हद तक अगम्य होती है कि उसे भाषा की प्रचलित अर्थ-सत्ता द्वारा नहीं पाया जा सकता और *क्या कविता से सामान्यीकरण की ऐसी माँग ग़लत है? क्या भाषा* की अगम्यता को इस हद तक निजी होने की छूट कविता में मिलती है? यह सवाल शमशेर से ही नहीं, उन जैसे सभी कवियों से पूछा जा सकता है। और यह भी कि क्षण-क्षण नयापन पैदा करने वाली प्रतिभा के लिए क्या परंपरा और समाज द्वारा उपार्जित सारे उपादान व्यर्थ हैं? शायद शमशेर भी ऐसा नहीं कहते। वे सिर्फ़ कहते हैं कि कविता के पास स्थूल लिबास उतार कर आओ। नवीन अर्थों में अपरिचय के बावजूद अगर उस तक पहुँचो तो वह अपने उपार्जित विधानों से

कविता को साँस बनाएगी। आख़िर उसने भी तो भाषा और शिल्प के उपार्जित विधान से ही यात्रा शुरू की है। उसी में नया अर्थ, व्यंजनाएँ और प्रक्रियाएँ पैदा की हैं। पाठक को सिर्फ बाहर-भीतर की अनेक रुढ़ियाँ तोड़नी होंगी। ऐसी मुक्ति और निर्मलता के अहसास के बिना जिन कविताओं को नहीं छुआ जा सकता, उनमें शमशेर की कविता भी आती है।

शमशेर की कविता पाठक से केवल भावनाशील होने की नहीं, उससे कविता के संस्कार की उम्मीद भी करती है और कविता सौन्दर्यावगाहन के लिए नए सिरे से प्रशिक्षित करती है। एक बार जब पाठक कविता से सम्पृक्त होना सीख लेता है तो फिर वह शमशेर की भावभूमि, अंतर्हित दृष्टि और विचार को भी आत्मसात कर लेता है अर्थात् संवेगों और संवेदों की अर्थवत्ता से भी अनायास जुड़ लेता है। कविता की यही प्रणाली कविता को शुद्ध समाज शास्त्रीय, शास्त्रीय, दार्शनिक, वैज्ञानिक अथवा अन्य ज्ञानधाराओं से अलग करती है और किसी हद तक भाषा के प्रचलित उपादानों से भी। इसे और स्पष्ट करने के लिए आगे मैं शमशेर की दो कविताओं 'सींग और नाख़ून' तथा 'शिला का ख़ून पीती थी' का उल्लेख करूँगा जिन्हें वे एक साथ रखकर समझने का सुझाव देते हैं। आप देखेंगे कि इनमें बिम्बों, प्रतीकों और रचना-विधान की नवीनता के बावजूद, स्रोत, आधार और अर्थबोध की प्रणाली के परिचित संकेत हैं।

3
संवेदना

अतल में अटका हुआ आँसू

'ओ मेरे घर
ओ हे मेरी पृथ्वी
सांस के एवज़ तूने क्या दिया मुझे
— ओ मेरी माँ?' *(ओ मेरे घर/ इतने पास अपने)*

जिस दिन पृथ्वी-माँ ने साँस के एवज़ में 'कवि का कटु-बीज' दिया, उसी दिन उसे दे दिया क्रूरतम युद्ध, कटुतम प्रेम, अपने से निरीह कई-कई भगवान, बुद-बुद-सी आँख और सितारों भरा आसमान, दर्शकशाला में फैली लंबे नाटक की हँसी (उपहास), सोने के नाम पर जागना, लोरियों के नाम पर अँधेरे की तलवारें—यही सब कुछ।

सारी दुनिया को अपना घर मानने वाले कवि को यही 'सब कुछ' तो मिलता है विरासत में :

'दुखिया दास कबीर है जागे अरु रोवै'

जिसके सीने में एक दरिया हो और उसमें हवाएँ गूँजती रहती हों ज़माने भर की; उसका क्या सोना और क्या हँसना?

शमशेर मूलतः रोमानी कवि हैं। स्वयं वे और उनकी कविताएँ इसका ऐलान करती हैं। लेकिन यह रोमान जिस संसार में आँखें खोलता है, उसकी हक़ीक़त यह है :

'एक रोमान
जो कहीं नहीं है मगर जो मैं
हूँ हूँ
एक गूँज ऊबड़-खाबड़

लगातार
आँख जो कि अँखुआ
आई हो बहुत ही क़रीब बहुत
ही क़रीब *(एक नीला दरिया बरस रहा/ चुका भी हूँ नहीं मैं)*

एक ग़ैर रूमानी दुनिया के बीच यह स्व-अर्जित हठी रोमान है— डब डबाई आँखों में सितारों भरे आसमान को पा लेने की चाह जैसा; लेकिन जिसे वास्तविकता में पा सकना मानो मौत की प्रतीक्षा करना है। फिर भी कवि है, जो इसे किसी भी क़ीमत पर, इंतिहाई हद तक, पाना चाहता है :

'मुझको प्यास के पहाड़ पर लिटा दो जहाँ मैं
एक झरने की तरह तड़प रहा हूँ
मुझको सूरज की किरनों में जलने दो—
ताकि उसकी आँच और लपट में तुम
फ़ौवारे की तरह नाचो।' *(टूटी हुई बिखरी हुई/ कुछ और कविताएँ)*

सचमुच अपने जीवन में शमशेर प्यास के पहाड़ों पर झरने की तरह तड़पते रहे; ख़ुद सूरज की किरनों जैसी आग में जलते हुए, उसकी लपट से फ़ौवारों को रंगारंग करते रहे। जबकि कटु-क्रूर जीवन से तो निराशा, कुंठा, अकेलेपन या अनास्था के स्वर उठते हैं— यह रोमान कहाँ से आ गया। यह लबालब प्रेम, यह वीणा की झंकार से बुना हुआ सौन्दर्य, जहाँ पृथ्वी साँस लेती है :

'कत्थई गुलाब
दबाये हुए है
नर्म नर्म
केसरिया साँवलापन मानो
शाम की
अंगूरी रेशम की झलक
कोमल
कोहरिल
बिजलियाँ-सी
लहराए हुए है
आकाशीय
गंगा की
झिलमिली ओढ़े
तुम्हारे
तन का छंद
गतिस्पर्श

अति अति. अति नवीन आशाओं भरा
तुम्हारा
बन्द बन्द' *(कत्थई गुलाब/ इतने पास अपने)*

सौन्दर्य की कितनी विराट, कितनी अद्वितीय अनुभूति शमशेर के रचना-संसार में है, इसकी यह एक झलक है। फ़क़त। जो सौन्दर्य-स्मृति को सारे आसमान और ज़मीन में समो देती है :

'सूना-सूना पथ है, उदास झरना
एक बादल-रेखा पर टिका हुआ
आसमान

जहाँ वह काली युवत
हँसी थी। *(सूना-सूना पथ है उदास झरना/कुछ और कविताएँ)*

शमशेर के लिए प्रेम ही सत्य है, बाक़ी सब मिथ्या :

तुमको पाना है अविराम
सब मिथ्याओं में
ओ मेरी सत्य!' *(तुमको पाना है अविराम/काल तुझसे होड़ है मेरी)*

यह सत्य दैहिक बोध में उतना नहीं है, जितना आत्मिक अनुभूति में है (गो कि दैहिक बोध के भी चित्र शमशेर के यहाँ हैं और बिलकुल अष्टधातु की मूर्ति जैसे ठोस) :

'हाँ तुम मुझसे प्रेम करो
जैसे मछलियाँ लहरों से
करती हैं
जैसे हवाएँ मेरे सीने से करती हैं।
(टूटी हुई बिखरी हुई/कुछ और कविताएँ)

या

'जाओ
किंतु मुझ में बस कर
सुगंध की तरह
मेरे साथ
मैं हवा की तरह अदृश्य जब हो जाऊँ
जहाँ कहीं भी जाओ।'
(तुमको पाना है अविराम/काल तुझसे होड़ है मेरी)

सौन्दर्य और प्रेम शमशेर के लिए एक संपूर्ण जीवन है, जहाँ वे अपने को पूरी तरह समर्पित करते और सुरक्षित महसूस करते हैं, क्योंकि वहीं से निकलते हैं जीवन के सारे रस-राग-प्रयोजन :

'तूने मुझे दूरियों से बढ़कर
एक अहर्निश गोद बना कर
लपेट लिया है।' *(सौन्दर्य/ इतने पास अपने)*

परंतु शमशेर की कविता जिस युग में विकसित हुई थी, वह नई कविता का था— सौन्दर्य और प्रेम से अनासक्त— बल्कि प्रतिरोधी। उधर प्रगतिशीलता के परचम उड़ रहे थे— पूरे ज़ोश-ओ-खरोश में। शमशेर की अकेली, ग़मगीन और अभावग्रस्त ज़िन्दगी थी। आम तौर पर समय और कवि के जीवनानुभव जिस एक बिन्दु पर मिल जाते हैं, वही कविता का केन्द्र होता है। हमने देखा है कि बहुत से किताबी कवियों के मुक़ाबले शमशेर का जीवन सच्चे सर्वहारा का जीवन था, कम्यून और कम्युनिस्ट पार्टी ने भी उन्हें प्रभावित किया था; नई कविता में उनकी मज़बूत साझेदारी थी— फिर भी शमशेर सबसे अलग थे। क्योंकि समय और जीवनानुभव जिस बिन्दु पर मिले थे उनसे कहीं हटकर था उनके भीतरी भूकम्प का केन्द्र। वे वहीं से परिचालित थे; जहाँ से अमृत ही नहीं विष भी निकलता है:

'सरलता से भी गूढ़, गूढ़तर
तत्त्व निकलेंगे
अमित विषमय
जब मथेगा प्रेम सागर
हृदय' *(चुका भी हूँ मैं नहीं/ वही)*

प्रेम सागर के मंथन से जो ज़हर निकलता है, वह शमशेर ने जिया भी है और पिया भी है। यही वह पीड़ा है जो उनके काव्य में अपार करुणा में बदली है। सारी मानवता के दुख पहचानने और उसे निजी स्तर पर भोगने के रूप में; तमाम विषमय को भोगते हुए उसके विरुद्ध आंतरिक गहन विद्रोह के रूप में। शमशेर की आलोचना के साथ जो गड़बड़ी हुई है वह यह है कि उनके रोमान में छिपी हुई उस पीड़ा को और पीड़ा में छिपी व्यापक मानवीय चिंता को, जो व्यंजन में स्वर की तरह छिपी थी, अक्सर नहीं देखा गया। नतीजे में उनमें फाँक दिखाई दी, जो वृहत्तर अर्थ में प्रेम को देखने पर शायद न दिखती और सुझाई देता कला का वह संघर्ष जिसमें—

'प्रेम का कँवल कितना विशाल हो जाता है
आकाश जितना
और केवल उसी के दूसरे अर्थ सौन्दर्य हो जाते हैं
मनुष्य की आत्मा में।' *(कला/ इतने पास अपने)*

शमशेर के कवि-मूल में जो प्रेम है, वही विराट होकर मनुष्य की आत्मा का बहुविध सौन्दर्य बना है, जिसकी ज़द में दुनिया की सारी हलचलें, अनुभूतियाँ, संघर्ष आ जाते हैं। क्योंकि सौन्दर्य सुन्दर ही नहीं है, सुंदर की अनवरत तलाश है जिसमें असुंदर भी मिलता है— और हद तक। इसलिए शमशेर के संवेदन-केन्द्र पर ही नहीं, उसके विकास-क्रम, प्रयोजन और परिणति पर भी ग़ौर करना ज़रूरी है। बिना इसके उनके विचार और काव्य; समय और काव्य; जीवनानुभव और काव्य में दरारें ही दरारें देखी जाती रहेंगी। उदाहरण के लिए अक्सर कहा जाता है कि शमशेर बात तो प्रगतिशीलता की करते हैं और कविताएँ रोमानी लिखते हैं— यानी वे कविताएँ जो उनकी श्रेष्ठ और गहरी कविताएँ हैं। विसंगति देखिए कि पहले तो इन्हें अलग-अलग किया गया और फिर उन पर अलग-अलग होने का आरोप लगाते हुए उनमें फाँक देखी गई; जबकि कवि को हमेशा ही इस पर हैरत होती रही है कि :

'शतरंज का एक खाना है
जिसमें तुम मुझे उठाकर रखते हो।' *(मेरे समय को/इतने पास अपने)*

लेकिन शमशेर हैं कि शतरंज का मोहरा बनने को तैयार नहीं। न ख़ुद। न कवि। अपने एक लेख 'आशु कविता' में वे लिखते हैं— (सच्चा कवि) 'स्थितियों को अपनी आँखों से देखता, अपनी अनुभूति की रोशनी में उसे समझता, अपने निजी तर्क से उन्हें परखता और उसे अपनी निजी शैली में प्रस्तुत करता है। दूसरों की मुँहदेखी बात करना उसकी शान के ख़िलाफ़ है (कुछ और गद्य रचनाएँ, पृ. 238)। 'डायरी' (कहीं बहुत दूर से सुन रहा हूँ) कविता में वे लिखते हैं— लेखक (और लेखक ही क्यों)— एक सांचा है, उस सांचे में आप फिट हो जाइए— हर एक के पास एक सांचा है/ राजनीतिज्ञ, प्रकाशक... शिक्षा संस्थानों के गुरु लोगों के पास।... यह लॉबी, वो लॉबी रूस के पीछे। नहीं अमरीका के। नहीं चीन के। अजी नहीं, अपने घर के बाबाजी के। इस झंडे के उस झंडे के। ... लाल, नहीं भगवा, नहीं काला, नहीं ससफे... लेकिन हमारी कठिनाई यह है कि उसे यांचों में कैद करना चाहते हैं, क्योंकि हम कविता में भी रोमानियत को रोमानियत; करुणा को करुणा; प्रगतिवाद को प्रगतिवाद के सपाट अर्थ में देखते हैं। नतीजा यह होता है कि शमशेर की संवेदना का मूल चरित्र हमें उनकी मुखर प्रतिबद्धता से मेल खाता प्रतीत नहीं होता। जबकि इस संवेदनात्मक धुरी पर ही उनकी पूरी सर्जनात्मकता (यहाँ तक कि प्रगतिशीलता भी) टिकी हुई है। हालाँकि यही बात मुक्तिबोध के साथ भी हुई है, क्योंकि उनकी मूल या केन्द्रीय संवेदना भयाक्रांतता या संत्रास (हॉरर) की है, जिसे हम शिल्प की अजब, जटिल बुनावट, भाषा के विद्रूप, बिंब के विखंडन, संरचना की विकृति आदि में देख सकते हैं। इसी को उन्होंने सामाजिक अर्थ दिया है, जिसे असंदिग्ध प्रगतिशीलता में देखना संभव लगता है। कारण यह है कि संत्रास

का प्रगतिशीलता से तालमेल स्वाभाविक है। शोषण की प्रक्रिया शोषित के भीतर संत्रस्त अनुभव के रूप में जन्म लेती है। तभी तो वह अकेले नहीं, संगठित होकर संघर्ष करता है। (संगठन अकेले व्यक्ति के संत्रास या भयग्रस्तता का परिहार है) इसीलिए मुक्तिबोध की मूल संवेदना और विचार में विसंगति नहीं दिखाई देती; जबकि शमशेर की मूल संवेदना— अर्थात् रोमानियत— प्रगतिशील विचारों की मूलगामी प्रतीत नहीं होती; उल्टे प्रतिगामी लगती है, क्योंकि उसे सामान्य अवधारणा समझा गया जिसका अर्थ प्रेम, सौन्दर्य, कल्पनाशीलता, वायवीयता आदि है। परंतु जैसा हमने देखा है कि शमशेर की रोमानियत का अंतस्तत्त्व है— वेदना; (जो उनकी प्रेम-सौन्दर्य की कविताओं में भी रह-रहकर झलकती है।) निरंतर मनुष्य के पक्ष में व्यापक लगती है। वास्तव में करुणा प्रगतिशीलता का भी मूल भाव है। इसी से उत्पन्न होता है विद्रोह और प्रतिकार। करुणा शमशेर की प्रगतिशील या सामाजिक भावना को ऐसा कोमल, वेदनामय अंतःस्पर्श और कहीं-कहीं व्यंग्यात्मकता देती है, जो सर्वथा करुणाग्रस्त रूमानी या रोदनशील कवियों से उन्हें अलग करती है। उदाहरण के लिए 'बैल' या 'लेकर सीधा नारा' कविता देख सकते हैं जिनमें निहित पीड़ा कितनी तीखी और मर्मबेधी है :

'मुझे वह इस तरह निचोड़ता है
जैसे घानी में एक-एक बीज कसकर दबाकर
पेरा जाता है
मेरे लहू की एक-एक बूँद किसके लिए
समर्पित होती है
यह तर्पण किसके लिए होता है?' *(बैल/ काल तुझसे होड़ है मेरी)*

अनुभूति स्पर्शी कविता, बहिर्मुख भाषणधर्मी कविता की तुलना में शोषण की यातना और उससे जन्मने वाले प्रतिकार को अधिक सशक्त— अर्थात् हृदय को हिला देने वाले अंदाज़ में व्यक्त करती है, यह उक्त कविता में महसूस किया जा सकता है और 'हमारे दिल सुलगते हैं' जैसे कविताओं में भी जहाँ सर्वहारा कहता है— 'सरकारें पलटती हैं जहाँ— हम दर्द से करवट बदलते हैं' *(कुछ और कविताएँ)* इसी तरह जब कवि कहता है :

'मैं समाज तो नहीं; न मैं कुल
जीवन
कण-समूह में हूँ मैं केवल एक कण
कौन सहारा
मेरा कौन सहारा!' *(लेकर सीधा नारा/बोल बोलेगी)*

ऊपर से यह असहायता की कविता लगती है परंतु यह व्यक्ति-जीवन में सामाजिक जीवन की करुणार्द्र पुकार है। 'प्रेम की पाती' इसका एक और उदाहरण है, जहाँ प्रेम की अत्यंत कोमल अपील में साम्प्रदायिकता पर तीखा प्रहार हुआ है। नदी की धार की तरह काटती है वह भीतर जमे हुए कटुता और क्रूरता के पत्थर को :

'होली का भय दिवाली का आतंक/
ईद-मुहर्रम एक ही भाँति।' *(बात बोलेगी)*

विकट उत्सव बोध पर कैसा व्यंग्य और सकारात्मक सुझाव यहाँ है।

जनता को एक करने के लिए कोई नारा न लगाते हुए कल्पनामयी, आकर्षक और आंतरिक बल पहुँचाने वाली उत्साह की कविता सामूहिक राग-बोध से ही उत्पन्न हो सकती है :

'सूरज
उगाया जाता
फूलों में
यदि हम
एक साथ
हँस पड़ते

चाँद
आँगन बनता
आँखों में रास-भूमि यदि—
सौर मंडल की मिलती।' *(सूरज उगाया जाता/ कुछ और कविताएँ)*

आगे कवि कहता है कि हम काव्य के सार होते; भूत और भविष्य के प्रतिमान होते— यदि हम वर्तमान में एक साथ हँसते, रोते, गाते। एकता का यह गीत भले ही रोमानी उपादानों से रचा गया है परंतु इससे व्यक्त क्या हो रहा है?

जो लोग शमशेर में प्रेम और सौन्दर्य की स्वप्निल दुनिया ही देख पाते हैं, उनके लिए का यह शेर नज़्र है :

'मेरी बातें भी तुझे ख़ाबे-जवानी-सी है,
तेरी आँखों में अभी नींद भरी है शायद।'
(कुछ शेर/ कुछ और कविताएँ)

असल में संवेदना पर विचार करते हुए संवेदना के प्रकार के साथ संवेदना के गुण, काल और प्रभाव पर भी विचार करना ज़रूरी होता है। शमशेर की संवेदना का गुण इतना गहरा और अंतरंग है कि वह मनुष्य को किसी उथले भाव की ओर नहीं ले जाता; किसी गहन का उत्खनन करने, गहरे डूबने की ओर बुलाता

है और उससे कुल मिलाकर जो संप्रेषित होता है, वह मनुष्य को प्रेम-सौन्दर्य के किसी एकायामी राग में गर्क नहीं करता, बल्कि उसमें एक मानवीय विश्व-दृष्टि का आविर्भाव करता है। इसे कवि की समग्रता में देखा जाना चाहिए। उसके कुल जीवन और साहित्य में स्वयं शमशेर मानते हैं कि—

> 'हर कवि का मोटे तौर पर, एक निजी काव्य-संसार होता है, जिसमें वह प्राय: रमा-सा रहता है। अगर ऐसा नहीं है तो वह वास्तव में कवि ही नहीं है। ज़रूरत इस बात की है कि कवि अपने इस निजी काव्य-संसार को निरंतर अधिक-से-अधिक समृद्ध करता चले। समृद्ध करने का अर्थ है अपनी विषय-वस्तु को लेकर अंदर-ही-अंदर गहरा चिंतन। जो भी विषय-वस्तु या उस विषय-वस्तु की दुनिया उसे आकृष्ट करती है, उसे अपनी भावनाओं में जितना भी अधिक मूर्त कर सकता है, उसे करना चाहिए। उसके हर पक्ष का विश्लेषण भी उसकी चेतना में जारी रहना चाहिए।'
>
> *-(कवि कर्म : प्रतिभा और अभिव्यक्ति/ कुछ और गद्य रचनाएँ, पृ. 232)*

शमशेर का एक 'व्यक्ति-मन' है, जिसे वे कवि का 'निजी काव्य-संसार' कहते हैं पर देखना यह है कि क्या यह 'व्यक्ति के लिए' ही है, या इसका कहीं उत्थान या प्रसार हुआ है? शमशेर की यह काव्य-पंक्ति — 'व्यक्ति-मन होता है जन-मन के लिए'— पंक्ति भर नहीं है उनके कुल काव्य-संसार का अक्स है। कवि, जीवन के हृदय की 'संकुचितता' पर क्षुब्ध होता है। परिणाम स्वरूप उसके कथन और कथ्य की सीमाएँ फैल जाती हैं। वह युद्धरत दुनिया के विरुद्ध खड़ा हो जाता है, त्रिभेदों और ईर्ष्याओं के जाल काट कर पूरी दुनिया को शांति की विराट गोद में देखना चाहता है, यानी जिस प्रेम-गोद में वह स्वयं लिपटा है, उसी में सारी दुनिया को लिपटा देखना चाहता है :

'शराब
यानी इन्सानियत की तलछट का छोड़ा हुआ
स्वाद
मुझे दो
मगर पैमाना हो
फ़ोर्निमिक्स
उन भाषाओं का, पश्चिम और पूर्व की जो
मिलन-सीमा को
आर्गानित करती हैं
बस
वहीं मेरा कवि
तुम्हारा अन्यतम...' *(नीला दरिया बरस रहा है/ चुका भी हूँ नहीं मैं)*

'अमृन का राग' इस माने में शमशेर की अद्वितीय कविता है, जहाँ उन्होंने दुनिया भर के सारे भेद-भाव तिरोहित कर, उसकी तमाम श्रेष्ठताओं का शांति के व्यापक अर्थ में रूपांतरण किया है। तभी अपने वैचारिक आग्रह को दरकिनार करते हुए कवि कहता है :

'मुझे अमेरिका का लिबर्टी स्टैचू
उतना ही प्यारा है जितना
मास्को का लाल तारा।' *-(अमृन का राग/ बात बोलेगी)*

वह हवा में उड़ती अनेक पताकाओं की पर्वाह न करते हुए जनता के उस दुख तक पहुँच जाता है, जो किसी पताका से परिभाषित नहीं होता :

'एक जनता का
दु:ख एक
हवा में उड़ती पताकाएँ
अनेक' *-(बात बोलेगी/ वही संग्रह)*

रोमानियत की एक अंतर्वृत्ति है स्वच्छंदता। वह कवि को किसी वाद या विचारधारा से प्रभावित होने पर भी उसको क़ैद में नहीं बँधने देती अन्यथा जो कवि किसी समय जिस चीन के प्रति अनुरक्त होकर 'चीनी जनता का लोक सत्तात्मक गण राज्य' के एक-एक अक्षर की प्रतिकृति को उदात्त काव्यार्थ देता है, जो अंतत: इन पंक्तियों के साथ समाप्त होता है :

'हमारा अन्तर
एक बहुत बड़ी विजय का
आलोक चिह्न है।' *(चीन/ कुछ कविताएँ)*

(यहाँ 'हमारा' शब्द सिर्फ़ चीन के लिए नहीं, भारत और सम्पूर्ण विश्व के सर्वहारा के लिए है।) परंतु उसी चीन के द्वारा 1962 में भारत पर आक्रमण करने पर वह आंतरिक वेदना लेकिन दृढ़ता के साथ भारत के 'सत्यमेव जयते' को वैश्विक और मानवीय मूल्य के रूप में प्रस्तुत करते हुए चीन को चुनौती देता है :

'वह
सत्य है
वह शक्ति के दुरभिमानियों का
रसातल नहीं।' *-(सत्यमेव जयते/ चुका भी हूँ नहीं मैं)*

यह कवि के 'व्यक्ति मन' में समाए विश्व-राग का ही नतीजा है कि वह साम्प्रदायिक दंगों के और आपसी झगड़ों के ख़िलाफ़ 'ईश्वर मैंने अगर अरबी में प्रार्थना की' या 'प्रेम की पाती' (घर के बसंता के नाम) जैसी कविता लिखता

है जो गाँधी की जन्मशती पर लिखी गई थी (यह आज को बात नहीं है, जब गाँधी प्रगतिशील विचारकों के लिए मान्य हो रहे हैं, यह तब की है, जब वे यहाँ प्रतिक्रियावादी माने जाते थे और उनको अहिंसा, धर्म आदि अछूत।) गाँधी का वास्ता देते हुए कवि गुजरात वासियों को धर्म की झूठी मान्यताओं के लिए लताड़ते हुए कैसा उपालंभ देता है :

'धन गुजरात में गाँधी तर्पन
धन्न रे धर्म की मूरत काँची।' -*(चुका भी हूँ नहीं मैं)*

साम्प्रदायिक दंगों में मनुष्य की सारी घृणा, द्वेष, संकीर्णता और कुरूपता उभरती है। मनुष्य के परस्पर सौहार्द्र और शंति की कामना करने वाले कवि को इससे बार-बार आघात पहुँचा है। इसकी अभिव्यक्ति उसने कई कविताओं में की है। स्वतंत्रता के पूर्व से ही यह सिलसिला चल रहा था, जिसे गोरों की राजनीति शतरंज के रूप में खेल रही थी। तब की सियासी चाल पर व्यंग्य करते हुए कवि परोक्ष रूप से हिन्दुस्तानियों को आगाह करता है और ऐसा हमला करता है जिसमें शोर कम और मार ज़्यादा है :

'जो धर्मों के अखाड़े हैं
उन्हें लड़वा दिया जाये!
जरूरत क्या कि हिन्दुस्तान पर
हमला किया जाए!!'

और अपने देशवासियों को ऐसी समझाइश भी देता है जिसमें अपना पन है, अपील है :

'तबीअत जैसी बन जाती हैं
फिर बनती ही जाती है
जो तन जाती हैं आपस में
तो तनती ही जाती है।'
-(धार्मिक दंगों की राजनीति/ काल तुझसे होड़ है मेरी)

रोमानियत एक आवेगात्मक अनुभूति है। प्रचलित प्रेम सौन्दर्य में सीमित न करें तो यह मूलतः आवेग ही है। यदि इसका समुचित विकास हो तो— इसमें दृष्टि संपन्न जोश और उत्साह भी शामिल होते हैं। शमशेर में आवेग का यह प्रेरक और उत्साहपूर्ण रूप देखें, जहाँ कवि घनीभूत पीड़ा के आवरण चीर कर ज्योति के निःशंक आकाश में उतर कर मोह, प्रेम और भय के कुअंकों को मिटा देने का आह्वान करता है :

'खोल, उठा ज्योति के मयंक
अंक मिटा भाल के, निशंक!

मोह सत्य भौंह बंक
लौह सत्य प्रेम पंक
... अन्यथा व्यथा, व्यथा, वृथा...
है अनादि : आदि रंक— शून्य अंक
तोल उठा वक्ष के अशंक भाव
की अथाहता!' –*(घनीभूत पीड़ा (एक सिम्फनी)/ कुछ कविताएँ)*

और यह वही धारदार चुनौती है जो उनकी प्रारंभिक कविताओं में ज़्यादा ठोस, ज्यादा कांक्रीट थी :

'ढीली इस जीवन की कमान
कसनी है,
छूटेंगे जिस पर कड़े प्राण
के तीर, जो कि
भेदेंगे सातों आसमान'
*
'टूटेंगे अरि दल के पहाड़
के पहाड़
जब जन-बल का सागर दहाड़
कर उट्ठेगा
करता विचूर्ण फ़ासिस्ट हाड़।' –*(जीवन की कमान/ उदिता)*

इसी दौर में उन्होंने 'बंगाल का अकाल' पर कई कविताएँ लिखीं। 'बंबई के 70 वर्ली किसानों को देखकर', 'नाविकों पर बमबारी', 'जहाज़ियों की क्रांति', 'य', 'शाम' जैसी अनेक यथार्थ वस्तुपरक प्रगतिवादी कविताएँ इसी समय की हैं। 'काश्मीर', 'फिर वह एक हिलोर', 'निजामशाही : 1948' जैसी राष्ट्रीय कविताएँ तत्कालीन राष्ट्रीय संघर्ष को लेकर लिखी शमशेर की ठोस कविताएँ हैं। शमशेर की संवेदना और काव्य-व्यक्तित्व का विकास वृक्ष की तरह हुआ है। रोमानियत प्रारंभ में जड़ों की तरह अधोमुखी रही है इसे उन्होंने स्वयं 'घोर वैयक्तिक अतार्किक भावुकता' कहा है। (मार्क्सवाद से संपर्क के बाद) उन्होंने उपर्युक्त ठोस और स्थूल कविताएँ लिखीं हैं जो वृक्ष के तने की तरह हैं। इसके बाद वे शाखाओं, पत्तों, पुष्पों की तरह आकाश में खुले-खिले हैं। वृक्ष एक ही है परंतु आकार, प्रकार, अभिव्यक्ति बदली हुई है। इसीलिए यद्यपि बाद में उन्होंने समकालीन समस्याओं को इस तरह प्रायः रेखांकित नहीं किया, हालाँकि उनके अक्स उनकी कविताओं में कलात्मक माध्यम से उतरे और दिशाओं में खुलते गए। लगता है कि ठोस आवेगपरकता धीरे-धीरे उनके काव्य में अधिक सूक्ष्म, परिष्कृत और कलात्मक होती गई। यानी घटनाएँ अंतर्वस्तु का रूप लेती गईं जो पदार्थ को नहीं, अर्थ को संप्रेषित करती

हैं। यही रचना को कालांतर में संप्रेषित हो सकने की शक्ति देती हैं। वैसे भी रच ना में जो संदर्भ होता है वही बाद में 'अर्थ' या 'संवेदन' के रूप में मनुष्य की अंतर्वृत्तियों को प्रभावित करते हुए रचना को कालजयी बनाता है। इसके भीतर उस मानस-वृत्ति का स्वरूप नहीं, बल्कि दी गई दिशा और सर्जनात्मक भूमिका प्रमुख हो जाती है। वही मूल्यांकन का आधार भी होती है।

कवि की अंतर्वस्तु पर ही निर्भर करता है कि वह अपने संवेदन को क्या शक्ल और कैसी दृष्टि देता है। उदाहरण के लिए कबीर अपने दार्शनिक और आध्यात्मिक संवेदन को (क्योंकि वे मूलत: संत थे) सिर्फ़ भगवत्-स्मरण, गुरु-सेवा या षट्चक्र-भेदन तक सीमित नहीं करते; समाज से परे कोई एकांत-संसार नहीं बनाते, बल्कि समाज के चौरस्ते पर खड़े हो जाते हैं। क्योंकि संतत्व ने उन्हें इतना निर्भय, निश्शंक और दृष्टि संपन्न बना दिया है कि वे किसी भी सांसारिक व्यक्ति की तुलना में समाजिक-धार्मिक रूढ़ियों, पाखण्डों पर अधिक प्रबल और अचूक प्रहार कर सके। अध्यात्म जहाँ एक ओर उन्हें आत्मा की अनश्वरता, निर्लोभ, सांसारिक जीवों से कुछ पाने की अनपेक्षा देता है, वहीं उन्हें मृत्यु भय, स्वार्थ, यश आदि की कामना से मुक्त करके ऐसा निर्भय चरित्र भी देता है, जो उनके धार्मिक संवेदनों को लौकिक प्रयोजन का उपकारक बना देता है। ऐसी स्थिति में क्या उनके आध्यात्मिक संवेदन की व्याख्या सामान्य प्रतीतियों से की जा सकती है? कवि द्वारा स्वयं की खोज करने वाली सरणियों से गुज़रे बिना तो हम सिर्फ़ उसकी कविता का सपाट वर्गीकरण और एक कवि के भीतर दो या कई कवियों की अवधारणा करते रहेंगे। कबीर को विद्रोही, समाज चेता कवि कहते हुए हम अक्सर भूले रहेंगे कि वे मूलत: दार्शनिक और आध्यात्मिक कवि हैं और इन्हीं संवेदों से उनका विद्रोही और समाज चेता कवि आविष्कृत हुआ है। इस चेतना की समझ के लिए उनके धार्मिक-दार्शनिक काव्य की व्याख्या विद्रोह-काव्य के रूप में करने की ज़रूरत नहीं है, बल्कि उनके सामाजिक काव्य को मूल संवेदन के संभावित परिणाम में देखने की ज़रूरत है।

सच तो यह है कि कवि अपनी सामग्री कहाँ से लेता है या उसमें निहित अनुभूति-दिशाएँ कौन-कौन-सी हैं— इस पर विचार करते हुए हम यह भी नहीं भूल सकते कि वह कैसे इनका नियोजन और संचालन करता है? क्योंकि एक-सी विषय-वस्तु होने पर भी दो कवि, इसी अर्थ में एक दूसरे से अलग होते हैं। मान लीजिए कि मुक्तिबोध, कलावादियों का शिल्प 'फ़ैंटेसी' लेते हैं, काफ़्का जैसा भय और आतंक उनके मन में भी है, परंतु वे फ़ैंटेसी का इस्तेमाल यथार्थ के उद्घाटन या यथार्थ के विद्रूप का उद्घाटन करने के लिए करते हैं; वायवीय और कलावादी शिल्प उनके यहाँ रचनात्मक स्तर पर भिन्न रूप लेता है। और उनकी भयग्रस्तता का वह अर्थ नहीं है जो काफ़्का की भयग्रस्तता का है।

शमशेर से साक्षात्कार लेने जब रंजना अरगड़े पहुँची तो पहला सवाल शमशेर ने ही किया— 'आपने वीरेन्द्र जैन को पढ़ा है?' ... 'मैं अगर किसी कवि से अपने को मिलता-जुलता मानता हूँ तो वह वीरेन्द्र जैन हैं।' शमशेर की स्वीकारोक्ति से रंजना की तरह औरों को भी आश्चर्य हो सकता है। तमाम समकालीन प्रगतिशील और नए-पुराने कवि जिनका नाम शमशेर बार-बार लेते हैं, उन्हें छोड़ कर वे वीरेन्द्र कुमार जैन को याद क्यों कर रहे हैं? इसलिए कि वीरेन्द्र कुमार जैन भी अपने मूल में तीव्र रोमानी कवि हैं। उनके अध्यात्म और विद्रोह की दिशाएँ यहीं से खुलती हैं। दोनों की दिशाएँ (बकौल शमशेर) बाद में अलग हुई, 'अगर्चे बिलकुल अलग नहीं।' यानी शमशेर रूमानी मूल की स्वीकारोक्ति के साथ उससे खुलने वाली संभावनाओं की ओर भी इशारा कर रहे थे और यह भी कि मूल की समानता के बावजूद कवि की अपनी जिज्ञासा और चिंतन-दिशा के अनुरूप रोमान भिन्न दिशाएँ ले लेता है। वीरेन्द्र जैन और शमशेर की भिन्न दिशाएँ क्या हैं? वीरेन्द्र कुमार जैन की रोमानियत अध्यात्म की दिशा में मुड़ गई है जबकि शमशेर की जिज्ञासाएँ और चिंतन-दिशा के कारण उनकी रोमानियत जीवन के विभिन्न पक्षों की ओर। जैसे मुक्तिबोध की भयाक्रांतता; सामाजिक, आर्थिक और बौद्धिक भयाक्रांतता तथा उससे आगाह करने वाली प्रवृत्ति में बदल जाती है, वैसे ही शमशेर की रोमानियत अनेक वैयक्तिक, सामाजिक, बौद्धिक, नैतिक, प्राकृतिक और वैश्विक दिशाओं को अगोरती है; इसे कहीं वे प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति, तो कहीं व्यक्ति, घटना, कला, लिपि या शोकानुभूति के माध्यम से व्यक्त करते हैं। लेकिन जैसे भय के केन्द्र से निकली मुक्तिबोध की कविता बहुरूपी होते हुए भी भय से लय बनाए रखती है, वैसे ही शमशेर की अनेक दिशाओं में खुलती कविता रोमानियत से अपनी लय बनाए रहती है। इसके उदाहरण हम ऊपर दे चुके हैं। परिणामस्वरूप वे उग्र व्याख्यान देने, भाषा को रेह्टरिक प्रवाह में बहाने, बिखेरने की अपेक्षा उसका बहुत सम्भाल कर सूक्ष्म और व्यंजक उपयोग करते हैं। इसके ज़रिए वे मानवीय करुणा, सौन्दर्य, प्रेम और मनुष्य-रक्षा के भावों को कविता में एहतियात से सहेजते हुए दिखाई पड़ते हैं। इसे इस तरह देखा जा सकता है कि जैसे किसी समय निराला ने छंद-मुक्ति को मानव-मुक्ति का पर्याय कहा था, वैसे ही हम भाषा के एहतियात से इस्तेमाल को जीवन की सम्हाल का पर्याय कह सकते हैं। ये सारे तत्त्व शमशेर की मूल रागात्मकता के हैं, इसलिए उनकी रोमानियत पर विचार करते हुए उसे रीतिवादियों, स्वच्छंदतावादियों, हालावादियों की रोमानियत से अलग पहचानना होगा, साथ ही उसे रोमानियत की सामान्यीकृत अवधारणा से भी (ज़रूरत के मुताबिक़) अलगाना होगा, और अलगाव की तमाम़ रूप-रेखाओं में हमें रोमानियत में बिंधी वेदना पहचाननी होगी। हम उनके जीवन-प्रसंग में देख चुके हैं कि ग़रीबी और कष्टों ने उनकी 'रोमानियत' को कैसी मानवीय सौगात दी है। इसी से व्यक्तिगत वेदना, विश्व-करुणा में बदलती है। फिर

भी विश्व करुणा और विश्व राग को एक बड़े कैन्वास में फैला कर देखना शमशेर की इस भावना की सही व्याख्या नहीं है— क्षुद्र से क्षुद्र चीज़ में राग और वेदना का अन्वेषण, उसे अपनी संवेदना से स्पर्श करना भी इसका अर्थ है और शायद ज़्यादा सटीक, ज़्यादा गहरा। एक छोटी-सी कविता देखें जहाँ रूप की सीमा के भीतर विराट-दृष्टि का विरल और विस्फोटक संकेत है :

'बँधा होता भी
मौन यदि
उस व्यथा के रूप से कोमल

जो कि तुम हो

समय पा लेता
उसे तब भी' -*(बँधा होता भी/ कुछ और कविताएँ)*

यह 1941 की कविता है, यानी प्रारंभ से ही कवि के मन में वह प्रयोजन निहित था जिसका बाद में विकास हुआ। प्रेयसी के मौन सौन्दर्य के भीतर कवि जिस व्यथा का अनुभव कर रहा है, वह 'रूप' में बँधी या सीमित नहीं है। एक करुण-मौन सौन्दर्य, काल को; (और देश को भी) अतिक्रमित करता है। अर्थात् अनंत तक फैलता है। यह है शमशेर की रूमानी दृष्टि।

शमशेर चीज़ों को राग और सौन्दर्य के उपादानों के रूप में ही नहीं देखते, उसके भीतर धड़कते जीवन की अनुभूति भी करते हैं :

'यह खंडहर की साँस
तुम जिसे भर रहे हो वंशी में—
है तंग घुटी-सी सुबह
लाल सफ़ेद सियाह!' -*('निशा निमंत्रण' के कवि से'/ उदिता)*

कवि अपने माध्यम को संबोधित करते हुए कहता है कि 'ओ माध्यम/ क्षमा करना/ कि मैं तुम्हारे पार जाना चाह रहा हूँ।' (सौन्दर्य/ *चुका भी हूँ नहीं मैं)* यह माध्यम के पार जाना क्या है— भाव, भाषा और अभिव्यक्ति के पार जाना। तभी वह प्रेयसी के हृदय में जो साज बज रहा है उसमें चाँद देखता है— यह एक अनुभव को बेध कर दूसरे अनुभव में पहुँचना है। ख़ैर, चर्चा चल रही थी माध्यम में, चीज़ों में जीवन को धड़कते महसूसने की। आप देखें कि शमशेर के यहाँ 'सोनाली धूप चुस्कियाँ पीती है', 'गुंचा जख़्मी होता है, 'चाँदनी की उंगलियाँ क्रोशिये बुनती हैं', 'फ़ैक्ट्री और मशीनों का हृदय' होता है, 'संध्या विजड़ित चरण

खड़ी रहती है,' 'लहरें सिर धुनती' हैं। इसका अर्थ है सृजन-माध्यम में अपने प्राण पिरो देना। कविता और अनुभव के समस्त अवयवों में जब तक कवि अपने प्राण नहीं डालता, उसका काव्य-संसार जड़ प्रतिकृत बना रहता है। शमशेर के यहाँ प्राण डालने की यह प्रक्रिया कितनी आत्मपरक और राग-रंजित है।

आलोचना की आधुनिक शब्दावली में वस्तु या घटना के प्रति तीव्र संवेदना को नकारात्मक ढंग से लेने का फ़ैशन है। लोग आसानी से कह देते हैं कि फ़लाँ कविता या कहानी के भीतर रोमानी सोच है— यानी यथार्थ से परे कोई आत्मपरक सरलीकरण! कोई आरोपित आवेग! लेकिन वस्तु तब तक सप्राण और संप्रेषण की तीव्रता हासिल नहीं करती जब तक उसमें कवि या कथाकार अपने प्राण नहीं डालता, यानी अपने को समूचा नहीं दे देता। समूचा देने का भाव ही आत्म-मुक्ति है। बस देखना यह है कि यह तथाकथित सृजनात्मक आचरण यथार्थ से इतनी दूर न पड़ जाए कि उससे बोध का विवेक समाप्त होकर ऐसी प्रवृत्तियाँ जन्म लें जो अतिरंजना को वायवीय बना दें। आत्म-मुक्ति दूसरे शब्दों में रचनाकार का उत्तरदायित्व है, क्योंकि यहाँ उसने 'दर्पण' की भूमिका से हटकर अंतर्वस्तु का स्वयं उत्खनन किया है, जिसके लिए वह स्वयं उत्तरदायी है; अपने विद्रोह के लिए भी और अभिप्राय के लिए भी। शमशेर की यह आत्ममुक्ति उन्हें समग्रता देती है— यानी समग्रता का विवेक और उदारता। कवि की मुक्ति किस अर्थ में हुई है इसे आप स्वयं देख सकते हैं :

'मैं जो हूँ
मैं कि जिसमें सब कुछ है ...

क्रांतियाँ, कम्यून
कम्युनिस्ट समाज के
नाना कला विज्ञान और दर्शन के
जीवन्त वैभव से समन्वित
व्यक्ति मैं।
मैं, जो वह हरेक हूँ
जो तुझसे, ओ काल, परे है।' –*(काल तुझसे होड़ है मेरी/ वही संग्रह)*

यह है अपने 'मैं' को समग्र में व्याप्त महसूस करने की विराटता और यह विराटता अराजकता नहीं, अविवेक नहीं, उत्तरदायी विश्व चेतना है, एक मंथन है जो तमाम अनुभवों, वस्तुओं और माध्यम को घंघोल देता है, सिर्फ़ घंघोलने के लिए नहीं, उनके संयोजन या सम्मिश्रण से उस 'दर्शन' को पाने के लिए जो इकहरे प्रयास से नहीं मिल सकता, शायद एक विराट समुद्र मंथन से ही मिल सकता

है :

'कवि घंघोल देता है
   व्यक्तियों के जल
हिला मिला देता है
   कई दर्पनों के जल
जिसका दर्शन हमें
   शांत कर देता है
और गंभीर
अंत में।' -*(कवि घंघोल देता है/ काल तुझसे होड़ है मेरी)*

शमशेर की कविता में समग्रता ही नहीं बहुलता भी है, और वे इसे कलम की नियति भी मानते हैं :

इक् क़लम है और सौ मज़मून हैं
एक क़तरा खूने दिल तूफ़ान है। -*(कुछ शेर/ कुछ और कविताएँ)*

अब आप देखिए न— जो युग रुदन का नहीं था, उसमें भी शमशेर ने मित्रों, स्नेहियों, कवियों, कलाकारों की मृत्यु पर जितनी कविताएँ लिखीं, उतनी किसी आधुनिक कवि ने नहीं। उन्हें जब भी किसी घटना, विचार, संबंध, रूप या अनुभूति ने भीतर तक छुआ है— वह उनकी कविता में उतर आई है। इसी वैविध्य ने उनके काव्य को 'रागात्मक ऐश्वर्य' दिया है और दिया है एक रचनाकार का प्रजातंत्र। मनुष्य के मन को जिस कोण से, जिस तरह कोमल बनाया जा सके, सहलाया जा सके, उसे अँधेरे-सँकरे संसार से मुक्त किया जा सके; सत्य और सुन्दरता की अनुभूति से छुआ जा सके, कठोरता को बेधा जा सके, घृणा और युद्ध के विरोध में खड़ा किया जा सके और संघर्ष का बल दिया जा सके— इसी प्रयास में लगी शमशेर की कविता विश्वनागरिकता का एक मार्मिक आख्यान है।

वास्तव में एक बड़े कवि का लक्षण ही यह है कि वह मनुष्य के सुख में, दुख में, लघुता में, विराटता में, आशा-आकांक्षा में— यानी कि हर वक़्त, उसके साथ रहे और साथ रहने का आश्वासन दे। शिविरों के चलते उनकी 'अम्न का राग', 'जहाज़ियों की क्रांति', 'पिकासोई कला', 'ये लहरें घेर लेती हैं', जैसी पचीसों कविताओं में इस या उस कारण से हम कोई ख़ामी दिखा सकते हैं या उन्हें निरस्त कर सकते हैं, परंतु तटस्थ दृष्टि से सोचें तो ये कविताएँ सच्चाई, सौन्दर्य, करुणा और संघर्ष की मार्मिक अभिव्यक्तियाँ हैं। उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित संग्रह 'कहीं दूर से सुन रहा हूँ' की कई कविताओं में सूक्ष्म आध्यात्मिक संकेत है। लगता है निराला की 'प्रार्थना' कविताओं के काल जैसी मनःस्थिति हो गई थी, तब उनकी। लेकिन यह तात्कालिक स्थिति ही नहीं थी, 1953 से 58 के बीच लिखा एक गीत

'भजन' इसमें संकलित है, जो भक्त कवियों जैसी मनस्थिति का है— 'हरि मोरी आड़ हरि ही के वाड़'। ये बीच अंत में पल्लवित हुए। इस पल्लवन में भारतीय योग और दर्शन की भूमिका भी देखी जा सकती है :

. अगम भाव
स्वयं उदधि स्वयं नाव
ना ना गतियों पार, जाते किस परम्
आत्मा का अद्भुत बहाव
लिए—
चीर सु षु म् ना की कमर
आदि ब्रह्म तल में
पकड़ वही बिंदु
जहाँ नाभि-नभ नभ-नाभि
नाल—
तल - बिन्दु :

में स्थित
ओ अशेष। (एक दुस्तर आध्यात्मिक प्रयास/ कहीं बहुत..)

इन सबको शामिल किए बिना शमशेर की संवेदना, समग्रता में शायद ही समझी जा सके :

'मृत्यु के परे की मेरी जन्म-शक्ति
आओ .....
मेरे विश्व संचित प्रिय
गहनतम
मेरी पूर्ण आत्मा को
और और और अधिक अपनाने आओ!' *('क्या हो गया बोलो'/ उदिता)*

इस विरल और उदात्त पुकार को क्या उनके राग-संसार का विस्तार नहीं कहना चाहिए, क्योंकि राग-केन्द्र के तमाम बड़े कवियों को हमने इस महाराग तक पहुँचते पाया है। उक्त कविता में 'विश्व संचित प्रिय' बहुत सार्थक और प्रतीकात्मक है। महाराग का अतीन्द्रिय आध्यात्मिक बोध उनका संचित *लौकिक राग* है— उसी का विस्तार और उदात्तीकरण। इस अर्थ में मुझे लगता है कि अब जो कविता मैं उद्धृत कर रहा हूँ वह सिर्फ़ प्रेमिका को संबोधित नहीं है, सम्पूर्ण मानवता को सम्बोधित है क्योंकि यह 'संदर्भ' कविता के समग्र प्रभाव में एक 'अर्थ' हासिल करता है जो किसी बिंदु से झरते प्रकाश की तरह मनुष्य के केन्द्र को ही नहीं

परिधि को भी घेरता है— जहाँ तक पहुँचना संभव हो, मन का :

'धरो शिर
हृदय पर
वक्ष वह्नि से,— तुम्हें
मैं सुहाग दूँ
चिर सुहाग दूँ!
प्रेम-अग्नि से— तुम्हें
मैं सुहाग दूँ!

विकल मुकुल तुम
प्राणमयि
यौवनमयि
चिर वसंत— स्वप्नमयि,
मैं सुहाग दूँ
विरह-आग से— तुम्हें
मैं सुहाग दूँ!' –*(गीत/ कुछ और कविताएँ)*

4
शिल्प

यानी कि मेरा ख़ून

कवि का कर्म अपनी भावनाओं में, अपनी प्रेरणाओं में, अपने आंतरिक संस्कारों में, समाज के सत्य के मर्म को ढालना— उसमें अपने को पाना है, और उस पाने को पूरी कलात्मक क्षमता से, पूरी सच्चाई के साथ व्यक्त करना है जहाँ तक वह हो सकता है।

(वक्तव्य/ कुछ और कविताएँ)

शमशेर की कविता का स्वभाव सूक्ष्म और सांकेतिक है। उनका शिल्प विशिष्ट, नया और प्राय: अनोखा है। अनुभूति का निजीपन और रचना प्रक्रिया जहाँ उनकी कविता को टटकापन और विरलता देती है, वहीं उसे जटिल भी बनाती है। बिम्ब, प्रतीक, उपमानों की नवीनता और उनका संश्लिष्ट रूप; भाषा की नई भंगिमा, संक्षिप्तता, अंतराल, व्याकरण चिह्नों का सर्जनात्मक प्रयोग आदि पाठक की अभ्यस्त रुचियों को झकझोरते हैं। परंतु शमशेर की विशिष्टता को अति विशिष्ट बनाती है उनके चित्रकार की ऐसी उपस्थिति, जो कविता को नई अर्थवत्ता देती है, परंतु साथ ही संप्रेषण की समस्या भी पैदा करती है।

कविता में अन्य कला-माध्यमों की उपस्थिति असामान्य नहीं है। वैसे भी कलाओं में परस्पर संवाद जारी रहता है, परंतु शमशेर के यहाँ चित्र और मूर्त्ति की उपस्थिति का एक भिन्न अर्थ है। कविता में आमतौर पर जो चित्र आते हैं, वे बिम्बधर्मी होते हैं और ऐंद्रिय संवेदनों को जगाते हैं। इन्हीं के सहारे पाठक अतींद्रिय अमूर्त्तन या कविता में निहित सांकेतिकता तक पहुँचता है। परंतु शमशेर के भीतर बिम्ब या अनुभूति काव्य भाषा में नहीं, चित्र भाषा में अवतरित होती है। उनकी कविता में सम्पूर्ण मूर्ति या चित्र ज्यों के त्यों आ जाते हैं जो संबंधित कला-माध्यम द्वारा पहले प्रतीक रूप ले चुके हैं। ऐसी स्थिति में पाठक को प्रतीकीकृत अमूर्त्तन के माध्यम से बिम्बानुभूति तक की विपरीत यात्रा करनी होती है, और

चूँकि कविता में भी अंततः उसे प्रतीकीकृत अमूर्तन या संकेत तक ले जाना होता है इसलिए अमूर्तन से उपलब्ध ऐंद्रिय अनुभव को पुनः अमूर्तन में बदलने की एक चक्राकार, जटिल यात्रा करनी होती है। यद्यपि शमशेर चित्र को काव्य भाषा में बदलने की कोशिश करते हैं, परंतु उनकी काव्य भाषा भी अपने में विरल और किसी हद तक निजी होती है, फिर भी वे जीवनानुभूति, चित्र और कविता के बीच भाषा का ऐसा सेतु बनाते हैं कि थोड़ा प्रयत्न करने पर न चित्र अव्याख्येय रहते हैं और न कविता के संवेदन। उदाहरण के लिए एक कविता 'कठिन प्रस्तर में' लेते हैं :—

'कठिन प्रस्तर में अगिन सूराख़
मौन पर्तों में हिला मैं कीट
  (ढीठ कितनी रीढ़ है तन की—
   तनी है।)

आत्मा है भाव
भाव-दीठ
झुक रही है
अगम अंतर में
अनगिनत सूराख़-सी करती। *(कुछ कविताएँ)*

'अनगिनत सूराख़ों वाले पत्थर में हिलता हुआ कीट' एक प्रतीकात्मक शिल्पाकृति है जो अमूर्तन की हैसियत पा चुकी है। अब कवि इसे कविता की भाषा में रूपांतरित करता है। इसका पहला माध्यम है— 'मैं'; और दूसरा है नियत पंक्ति से अलग कोष्ठक में रखी पंक्ति। इनके द्वारा शिल्पाकृति का काव्यार्थ खुलने लगता है; आकृति में निहित मानवीय अर्थ कविता के उपादानों में बदलने लगते हैं यानी कविता के 'अर्थ' बनने लगते हैं। 'मैं' कीट का रूप ले लेता है या कीट 'मैं' का। 'रीढ़' के संदर्भ से पत्थर मानवीय देह में बदल जाता है, जिसमें कीट रूपी 'मैं' घूम रहा है। यह संकेत देने के बाद सोचने को वक़्त देता हुआ कवि एक बोलता हुआ अंतराल रचता है। क्योंकि पाठक को दूसरे अंश में शिल्प के बाहर खड़ा होना है— काव्यार्थ को ग्रहण करने के लिए। कवि कहता है, 'आत्मा है भाव'— यानी भाव ही आत्मा है, जिसकी दीठ (दृष्टि) झुकी हुई है(जैसे कोई वैज्ञानिक अन्वेषण के लिए परखनली पर, अध्येता किताब पर या पुरातत्त्वविद् मूर्ति पर झुकता है) तात्पर्य है— अन्वेषणशील दृष्टि । यह दृष्टि अगम्य अंतर में उतरती है जो अभी पत्थर की तरह ठोस है। (तू·पत्थर हो गया है ओ विहग मन)क्योंकि अपने संस्कारों और जड़ताओं में यह भाव-दृष्टि इसी मन में आबद्ध है, जो अनगिनत सूराख़ करती हुई परत-दर-परत उसे बेधने की कोशिश करती है।

इस बोध के बाद दोनों अंशों के संश्लेष की अंतर्क्रिया पाठक में प्रारंभ हो जाती है कि जैसे कोमल-सा प्रतीत होने वाला कीट पत्थर में अगणित सूराख़ करता रहता है, वैसे ही अपनी जड़ता और सीमा के कारण प्रस्तर हो गये मानव मन में आत्मा की (मन की) भाव-दृष्टि अनगिनत सूराख़ करती रहती है। भाव-दृष्टि द्वारा हृदय के खनन की प्रक्रिया इतनी अंतर्वर्ती और मौन जारी रहती है कि बाहर से अपरिवर्तित दिखते हुए भी भीतर परत-दर-परत मन की जड़ता कटती जाती है, परिणामतः उसके भीतर अनेक मार्ग अन्वेषित होते जाते हैं। यहीं जाकर यह बात पुष्ट हो जाती है कि 'कठिन प्रस्तर' में अगिन सूराख़ करने वाला वास्तव में कीट ही है। चित्र में उसका संकेत अनगिनत सूराख़ करने वाले प्रस्तर के भीतर हिलते कीट के रूप में ही दिया जा सकता था, क्योंकि वह परिणत शिल्पाकृति है। परंतु इस रूप में भी उसके भीतर अर्थ या व्यंजना का पूरा संसार सक्रिय है। इसे स्पष्ट करने के लिए शमशेर की ही एक कविता का स्मरण करना चाहता हूँ जो उन्होंने विजय सोनी के चित्र देखने के बाद लिखी है :

'यहाँ जो कुछ ठोस है
वह धड़क रहा है
और जहाँ धड़कन है वहाँ
ख़ामोशी है
दम साधे हुए' *(इतने पास अपने)*

इसी धड़कन को कविता शब्द के माध्यम से एक गतिशील बिम्ब में बदलती है। कीट भी सुकुमार है और भाव-दृष्टि भी। पहले खण्ड में, कोष्ठक में कहा गया है कि 'तन की रीढ़ इतनी ढीठ है कि अब भी तनी हुई है।'— अनगिनत सूराख़ों के बावजूद। यही बात मन की ढीठता के साथ जुड़ जाती है जो भाव-दृष्टि द्वारा अगणित सूराख़ों के बाद भी ऊपर से ज्यों का त्यों है। परंतु दोनों जगह बात एक ही है कि ऊपर से यथावत् दिखते हुए भी भीतर से कीट या भाव-दृष्टि ने अनगिनत सूराख़ कर दिये हैं— अर्थात् भाव-दृष्टि मन में असंख्य अनुभूतियों, संवेदनाओं और चिंताओं के लिए रास्ता बना चुकी है। और उसका ठोसपन अब दिखावटी रह गया है, भाव-दृष्टि यही काम करती है।

कविता का यह एक प्रस्थान है। परंतु उसे और भी आगे जाना है। मसलन इस संकेत का विस्तार करने पर हम पाते हैं कि हमारा संसार या समय अत्यंत कठोर और दुर्बोध है। इसमें यदि सूराख़ किए जा सकते हैं, यानी उसकी जड़ता को काटा जा सकता है तो भाव-दृष्टि के द्वारा ही। और यह काटना अंतर्क्रिया है। व्यक्तित्वान्तरण की प्रक्रिया जैसा, जिसमें रूपाकार के अपरिवर्तित होने पर भी मन में अनेक परिवर्तन घटित हो जाते हैं। यानी भाव-दृष्टि ही संसार को भीतर से बदल सकती है।

संभव है कविता के और भी अर्थ निकलें, क्योंकि शिल्पाकृति के काव्य-भाषा में बदलने के बाद अमूर्तन की अनेक संभावनाएँ हो सकती हैं। परंतु केवल उक्त अर्थ को पाने के लिए ही पाठक को शिल्प और काव्य-भाषा की लंबी घुमावदार यात्रा करनी होती है। शायद यह कहना ज़रूरी नहीं, फिर भी है कि इस पूरे अंतर्बाह्य संघर्ष के बाद पाठक जीवन में भाव-दृष्टि या संवेदनशीलता की अमूर्त सत्ता का जैसा वास्तविक और आंतरिक साक्षात्कार करता है— वह उसे निजी उपलब्धि लगता है।

कविता में शिल्प या चित्र की क्या भूमिका हो सकती है और कैसे वह अनुभूति के व्यापक आयाम को संश्लिष्ट और सारग्राही बना देती है इसका यह एक उदाहरण भर है। जब लोग कला और कलावाद पर बहस करते हैं और कला को भी कलावाद के खाते में डाल देते हैं तब वे शायद ऐसी कला और भाषिक शक्तियों को नज़रअंदाज़ करते हैं जिनमें अनुभूति फूल की तरह धीरे-धीरे खिलती है— इस हद तक कि पंखुरी तक गिनी जा सके। कला का और क्या प्रयोजन होता है?

कहीं-कहीं हू-ब-हू चित्र न आने पर भी शमशेर के भीतर बैठे चित्रकार की सक्रिय मनोभूमि देखी जा सकती है। यदि वहाँ इस दृष्टि से विचार न किया जाए तो कविता के संकेतों का अन्यथा अर्थ निकलने का ख़तरा बना रहता है। उदाहरण के लिए एक कविता है— 'एक मुद्रा से' (कुछ और कविताएँ)। इसमें कुछ लोगों ने स्थूल काम-भावना को उत्प्रेरित करने वाला (इरॉटिक) बिम्ब देखा है और कुछ ने इसे कवि की 'बोल्डनेस' कहकर सराहा है। जबकि सौन्दर्य को सम्पूर्ण रूप में रचने की यह मूर्तिकार या चित्रकार की अपने मॉडल से माँग है :

—सुंदर
उठाओ
निज वक्ष
और - कस - उभर! ...

यदि इन पंक्तियों को सुन्दरी के प्रति कवि का संबोधन मान लिया जाएगा तो इनमें प्रबल कामावेग ध्वनित होगा, परंतु यदि पोर्ट्रेट बनाने वाले चित्रकार या मूर्तिकार द्वारा अपने मॉडल से की जाने वाली माँग से इसे जोड़ा जाएगा तो यह कला की ऐसी माँग होगी जो पूर्ण और सुगठित सौन्दर्य को केन्वास पर उभारने या पत्थर में उकेरने की सर्जनात्मक माँग प्रतीत होगी। पहला ही शब्द रचना की दिशा की ओर इशारा करता है। सुन्दरी को 'सुन्दर' कहते ही देह-बोध, सौन्दर्य-बोध में बदल जाता है। यही सौंदर्य यदि मूर्तिकार या चित्रकार के सम्मुख पूरे कसाव और उभार में प्रत्यक्ष नहीं होगा तो प्रतिकृति में सौन्दर्य अपनी पूर्णता में कैसे उतारा जा सकेगा? कलाकार की इस भूमिका के बाद कवि की भूमिका प्रारंभ होती है।

कवि चित्र में अपने रंग भरता है। वह कहता है : 'क्यारी भरी गेंदा की स्वर्णारक्त/ क्यारी भरी गेंदा की; तन पर खिली सारी— अति सुन्दर' ऐसे कथन से वह भराव, रंग, श्रृंगार आदि को ऐंद्रिय बिम्ब-श्रृंखलामें बदल कर एक सम्पूर्ण संयोजन (कांपोजिशन) रचता है। इस तरह प्रारंभिक पंक्तियों का औचित्य खुलने लगता है और चित्रकार या शिल्पकार की सर्जनात्मक लेकिन अनासक्त प्रतीति काव्यार्थ में बदलने लगती है। इसी के साथ कवि पाठक को राग के वासनापरक अर्थ से पृथक् करता हुआ उसकी ऐंद्रियानुभूति को उदात्तता देता है :

'स्वप्नजड़ित-मुद्रामयि
शिथिल करुण!
हरो मोह ताप, समुद
स्मर-उर-वर:
हरो मोह ताप—
और और कस उभर'

'स्वप्न जड़ित मुद्रामयि शिथिल करुण' जैसी मुद्रा द्वारा कैसे संभव है कि वह सौन्दर्य 'मोह ताप' को 'समुद' दूर सके? इसीलिए तो उससे उन्मुक्त और प्रमुदित होने को कहा गया है। आगे 'स्मर-उर-वर' द्वारा काम का उदात्तीकरण हुआ है। हृदय में स्थित काम यदि 'वर' हो तो निश्चय ही वह सीमित देह-बोध से ऊपर उठ जाता है। यहाँ जाकर स्पष्ट होता है कि स्तन के सम्पूर्ण उभार के आह्वान से प्रारंभ कविता वास्तव में सौन्दर्य को 'समुद' पाने की रचनात्मक अनिवार्यता थी। 'सौन्दर्य की सम्पूर्णता' और 'मोह ताप' को हरने के लिए काम की 'वर' और 'समुद' उपस्थिति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ये हृदय को आरक्त करते हैं, कुंठा के बंधन खोल कर मनुष्य को प्राणवान और पुष्ट करते हैं :

'अंकित कर विकल हृदय-पंकज के अंकुर पर
चरण-चिह्न
अंकित कर अंतर आरक्त स्नेह से नव कर, पुष्ट बढ़ूँ
सत्वर चिर यौवन वर!'

परिणामस्वरूप जहाँ हृदय सीमित बोध में जकड़ा था, वहीं अब निर्झर बहने लगता है।

यदि हम इस कविता से चित्रकार या मूर्तिकार को हटा दें तो यह वासना से प्रारंभ होकर तृप्ति में ख़त्म हो जाएगी। इस तरह कविता का अभिप्राय ही बदल जाएगा; क्रमशः खुलते उदात्तता के कपाट किसी ऐसी खिड़की में बदल जाएँगे जिसके पास आकाश का कोई एक दिया हुआ टुकड़ा है। वैसे भी यह कितना असंगत लगता है कि कोई कवि किसी सुंदरी से अपने उरोजों को कसने-उठाने को कहे। क्योंकि कवि में स्वयं ही वस्तु-बिंब रचने की क्षमता होती है। रूप का चयन और उसके प्रति आचरण कवि को कल्पना, अनुभूति, स्मृति आदि में निहित होता है।

किसी बाहरी पुकार के बिना भी कवि वक्ष का वही रूप उभार सकता है जो उसकी कल्पना और अनुभूति में है। इसलिए उसे ऐसे संबोधनों की ज़रूरत क्यों होने लगी? तात्पर्य यह कि शमशेर की कविता में चित्रकार की उपस्थिति को सही अर्थ में पहचाना जाना उनके सच्चे काव्यार्थ को पाने के लिए कई बार ज़रूरी होता है।

शमशेर ने कुछ ऐसी विलक्षण कविताएँ लिखी हैं जिनके चित्रों और बिम्बों को बिना उनके निजी संदर्भों के नहीं समझा जा सकता। संदर्भों के अभाव में उन्हें अक्सर अतियथार्थवादी, मुक्त आसंगी या चेतना प्रवाही कविता तक कह दिया गया है। परंतु एक बार संदर्भ जान लेने पर उनके गहरे मानवीय अर्थ प्रकट होते हैं। उदाहरण के लिए उनकी दो कविताएँ 'सींग और नाख़ून' तथा 'शिला का ख़ून पीती थी' लेता हूँ, जिन्हें शमशेर ने एक साथ रखने का आग्रह किया है, संभवत: इसलिए कि ये दोनों— एक चित्र के दो खंड हैं।

सींग और नाख़ून

सींग और नाख़ून
लोहे के बक्तर कन्धों पर।

सीने में सूराख़ हड्डी का।
        आँखों में : घास-काई की नमी।

एक मुर्दा हाथ
        पाँव पर टिका
                उलटी क़लम थामे।

तीन तसलों में कमर का घाव सड़ चुका है।

जड़ों का भी कड़ा जाल
        हो चुका पत्थर।

शिला का ख़ून पीती थी

शिला का ख़ून पीती थी
                वह जड़
        जो कि पत्थर थी स्वयं।
सीढ़ियाँ थीं बादलों की झूलतीं,
                टहनियों-सी।

और वह पक्का चबूतरा,
ढाल में चिकना :
सुतल था
आत्मा के कल्पतरु का?

(कुछ और कविताएँ)

इन कविताओं में से 'सींग और नाख़ून' के बारे में हमें शमशेर का एक संदर्भ प्राप्त है। रंजना से साक्षात्कार में वे कहते हैं 'सींग और नाख़ून' की बात जब आप कहती हैं तब ... असल में सारी बातें... बातें नहीं रहतीं— बातें अनुभव में ट्रांसफ़ॉर्म हो जाती हैं।... उन दिनों मेरे ससुर साहब बीमार थे, उन्हें कैंसर था, एच. बी. पी.था...बहुत बीमार थे। मुझे बीमारी देखने का मौक़ा मिला। मैं अस्पताल मे रहता था। प्रोबेबली आई थिंक सो, दैट दीज थिंग्स हैव कम फ्रॉम देयर... यह तो मेरा एक्सपीरियंस हुआ... फिर मेरी पत्नी बीमार रहीं। वहीं से ये इमेज आए।' शमशेर यह भी कहते हैं कि ये सब चित्र में आए।

इन संकेत-सूत्रों से स्पष्ट है कि इन कविताओं में अस्पताल, बीमारी, बीमार आदमी के बिंब हैं। हम देख पाते हैं कि 'सींग और नाख़ून' के द्वारा यहाँ जो चित्र उभरता है वह ऑपरेशन करने वाले डॉक्टर का ही हो सकता है जो ऐप्रेन लुबा चोगा पहने हुए है। चीर-फाड़ करते डाक्टर की निस्संग क्रिया की कवि के मन में यही छवि उतरी होगी। एक चित्र स्वयं का है— कवि का, जो अस्पताल में रह रहा है लेकिन निस्सहाय-निष्क्रिय है। मुर्दा हाथ जो बैठे हुए व्यक्ति के पाँव पर उल्टी क़लम थामे पड़ा है, एक निस्सहाय संवेदनशील कवि का ही हो सकता है। मरीज़ की स्थिति यह है कि उसके शरीर के तीन तसलों- पेट, गुर्दा और जिगर- में घाव सड़ चुका है। यानी ये घाव के तसले बन चुके हैं। बीमार की नसें संवहनहीन, जड़ हो चुकी हैं और उनका जाल पत्थर की तरह निश्चेष्ट, कठोर और अविचल हो चुका है। यह एक संपूर्ण कविता चित्र-भाषा में लिखी गई है।

दूसरी कविता भी अस्पताल (सेनीटोरियम) का चित्र प्रतीत होती है जहाँ शमशेर की टी. बी. ग्रस्त पत्नी को रखा गया था। अंत में वे ऐसे सेनीटोरियम में ले जाई गई थीं जहाँ छोलदारियाँ थीं। टी. बी. का मरीज़ एक शिला जैसा है जिसकी जड़ें अर्थात् नसें स्वयं उसका ख़ून पी रही हैं और उसे दिन पर दिन क्षीण बना रही हैं। छोलदारियाँ बादल की सीढ़ियोंनुमा टहनियों जैसी निरर्थक झूल रही हैं। ये छोलदारियाँ न होकर उस जीवित व्यक्ति के झूलते शिथिल अंग भी हो सकते हैं। जिस जगह मरीज़ लेटा है. वह सुतल पक्का चबूतरा है। कवि के मन में प्रश्न उभरता है कि इस चबूतरे पर क्या यह 'आत्मा का कल्पतरु' लेटा है? 'आत्मा

का कल्पतरु' एक अत्यंत रागात्मक बिम्ब है। प्रेयसी- पत्नी से बढ़कर 'आत्मा का कल्प तरु' कौन होगा?

पत्नी की सेवा प्राण-पण से करने के बावजूद, यहाँ भी आसन्न मृत्यु के आगे कवि की परवशता ध्वनित होती है।

कविता का बहुत-सा कथ्य अंतरालों में है, और निश्चय ही इसके बिंब अनोखे और जटिल हैं। इन्हें पहचानने के जो सूत्र हमें शमशेर से मिले हैं, वे अंतरालों में निहित अर्थ समझने में मदद देते हैं और बिंबों तथा चित्रों को अभिप्राय से जोड़ते हैं। लेकिन हर जगह तो यह संभव नहीं है, तब सवाल पैदा होता है कि क्या एक पाठक संदर्भों और संकेतों के अभाव में मनचाहे ढंग से अंतरालों या चित्रांकनों के अर्थ निकालने के लिए स्वतंत्र है? पाठक को 'सेल्फ़ डिस्कवरी' के लिए सक्रिय करने वाली कविता के ये ख़तरे तो हैं लेकिन पाठक की सृजनशीलता का लाभ भी, इस तरह कविता को मिलता है। क्योंकि निजी संदर्भों, संकेतों के बावजूद कविता या चित्र के अमूर्त्तन में भी एक जनतांत्रिक अर्थ होता है। जो हो, यदि कविता को खनित करते हुए कवि की तर्क प्रणाली, शिल्प, अनुभूति का मूल स्वर पहचाना जा सके तो कविता को पाना पाठक का वास्तव में महत्त्वपूर्ण सर्जनात्मक अन्वेषण होगा।

जो कला, पाठक या आलोचक को स्वाधीनता देती है वह उससे भी संयम और औचित्य की उम्मीद करती है। आधुनिक कवियों में शमशेर ने पाठक को सर्वाधिक स्वतंत्रता दी है और इस तरह बड़ा ज़ोखिम भी उठाया है। यों यह बात उस स्वाधीन कवि के पक्ष में जाती है, जिसकी सार्थकता बिना पाठक या सहृदय को स्वाधीनता दिए, सही अर्थ में चरितार्थ नहीं हो सकती। परंतु ऊपर उद्धृत दोनों कविताओं में अंतराल जिस घटना-संदर्भ से हमने पाटा है, वह महज़ सहारे के लिए, सीढ़ी के रूप में; या कहें कि कविता में निहित बिंब और अर्थ-प्रणाली को समझने के लिए है। शमशेर ने यहाँ कोई सपाट चित्र नहीं बनाया है न कोई फ़ोटोग्राफ़ी की है। इतना ही नहीं, स्थूल वर्णन या प्रसंग को सांकेतिक भाषा में रखना भी उनका उद्देश्य नहीं है। वे कहते हैं कि ये इमेज (बिम्ब) वहाँ से आए हैं यानी ससुर और पत्नी की बीमारी से, परंतु इससे बीमारी या अस्पताल का दृश्य उपस्थित हो यह उन्होंने नहीं चाहा होगा। वह उनके 'एक्सपीरियंस'(अनुभव) में ढल कर किसी व्यापक, ज़्यादा गहरे अर्थ की तलाश में है।

यदि इस संकेत की गहराई और व्यापकता में उतरें तो हमें लगेगा कि पहली कविता ख़ूँखार समय में (जो तीनों लोकों में व्याप्त है— तीनों तसलों में सड़े हुए घाव की तरह) मनुष्य की संवेदना के असहाय होने की बात कहती है। दुनिया बीमार है। संवेदना का फैला जाल जो उसे सुरक्षित और सजीव रखता है अब जड़ हो चुका है। सारे ब्रह्माण्ड में पीप, पशुत्व के ख़ूँखार हाथ ही सुरक्षित हैं

और जिन्हें सुरक्षित होना चाहिए था— कवि के हाथ और क़लम; वे पक्षाघात की हालत में हैं— संवेदना की धारा ही कुंठित नहीं हुई, क़लम तक उल्टी हो चुकी है, संवेदना की पूरी संभावना ख़त्म करते हुए।

दूसरी कविता में संसार जड़ हो चुका है, उसी की जड़ता को चूसकर ज़िंदा रहने की कामना मानो एक ट्रैजिक रूप ले चुकी है। नक़ली प्रयास हो रहे हैं दुनिया को बचाने के, जिनका कोई फ़ायदा नहीं। भला बादलों से भी कोई सीढ़ी बन सकती है? मनुष्य की समस्त प्रियतम आकांक्षाएँ (आत्मा का कल्पतरु), पत्थर के चबूतरे जैसे संवेदनहीन धरातल पर पड़ी हैं। पेड़ तो तभी न 'कल्पतरु' होगा जब वह जमीन के भीतर जड़ें जमाए खड़ा होगा। वह पछाड़ खाकर गिर चुका है, इस दुनिया के कठोर और निष्करुण यथार्थ की चोट से— कविता की अनुभूति वहाँ तक जाती है जहाँ शब्द, प्रतीक, बिम्ब, अंतराल सम्मिलित रूप से अर्थ-व्यंजनाओं में खुलते हैं— पाठक द्वारा अन्वेषण करने पर। परंतु इसके लिए ज़रूरी है कविताओं के बिम्बों, प्रतीकों, प्रत्याक्षानुभवों और स्मृत्यनुभवों का उत्खनन और अन्वेषण।

इस अन्वेषण का अर्थ सर्वत्र किसी दुरूह घाटी में उतरना नहीं है बल्कि दुरूहता से बार-बार सहजता की ओर लौटना भी है। क्योंकि शमशेर की सहजता में छिपे जीवनार्थ की खोज 'धरती के काव्य' की खोज जैसी है। इस अर्थ में भी उनकी कविता पाठक को दीक्षित करती है।

उनके बिंब, उपमा, प्रतीक और भाषिक संरचना यहाँ तक कि स्पेस तक पाठक के संवेदनों, अवबोधों को निजी छुअन देते हैं और नई पहचान भी। शमशेर के रंग, रूप, गंध, स्पर्श आदि के वैविध्यपूर्ण माध्यम से पाठक सिर्फ़ अपनी कामना के संसार में ही नहीं, उसके पार फैले अपार कामनातीत संसार का साक्षात्कार करता है- विस्मित भी होता है, अनुरक्त भी और नई कल्पना के लिए उद्यत भी।

शमशेर वस्तु या रूप को, अनुभूति की पराकाष्ठा में उपलब्ध करने के लिए जिस संवेदनात्मक भाषा का उपयोग करते हैं, वही उनकी कविता का केंद्रीय शिल्प है; जो शिल्प की तरह न होकर अनुभूति का अविच्छिन्न अंतरंग है। जैसे 'शाम' को लें जो उनके यहाँ अक्सर ग़मगीन है और प्राय: बिंब के माध्यम से प्रतीक का रूप ले लेती है, परंतु कहीं भी वह बिंब या प्रतीक न लगकर अपने अनुभव की कवि द्वारा अभिव्यक्ति लगती है- वह कहीं 'पीली शाम' है; कहीं 'पत्थर साँझ' और अगर 'पीली शाम', 'पतझर का ज़रा अटका हुआ पत्ता' है तो 'पत्थर साँझ' से अनुरोध किया गया है कि 'हृदय पर मत टूटना।' शमशेर के साथ होने पर हमें पता लगता है कि 'शाम के कोमल अँधेरे' का 'मन' भी होता है; वह मन सूने घर में धीरे-धीरे डूब जाता (समा जाता) है, जो सिर्फ़ 'घर' नहीं उदास व्यक्ति का मन भी है। कहीं शाम का स्पर्श- 'अंगूरी रेशमी झलक' सा कोमल लगता है। शाम में कहीं कवि उस आकाश को भी देखता है जो धुँधली बादल-रेखा

पर टिका हुआ है और उस बादल को भी जिसके 'मौन गेरू पंख' संन्यासियों जैसे हैं। शाम में वह पर्वत शृंगों की ख़बर भी लेता है जो 'विगत के सोपान' हो गए हैं और उस पथ की भी जो, 'ऊपर हाथ उठाए' (बिदा का) 'बढ़ जाता है।'

इन बिंबों और उपमाओं में ऐंद्रिय बोध ही नहीं पास या दूर तक फैला विश्व-बोध भी है; जैसे तमाम संसार करुणा या वेदना की छाया में लयमान हो। परस्पर एक-दूसरे को सँभालता, सहलाता और गहराता हुआ। यह शमशेर की उस सृजन क्षमता का पता भी देता है जिससे वे व्यक्तिगत अनुभूति को सार्वजनीन और सार्वभौम बनाते हैं। परिणाम स्वरूप किसी भी संवेदनशील पाठक के लिए ये सारे बोध और उनसे खुलता अर्थ-संसार दुर्बोध नहीं रह पाता है। क्या जब कवि 'साँस का सूर्य' और 'साँस की गंगा' कहता है तो हम इसे सिर्फ विशेषण विपर्यय के रूप में समझते हैं या सूर्य और गंगा को, जो हमारी साँस-साँस में समाई है- भीतर से, अनुभूति में जीते हैं! धुली लॉन पर सुबह की धूप को क्या हम 'ठंडी सुनहरी धूप' के रूप में पुन: ताज़े और समृद्ध अनुभव में नहीं पाते? ऐसा दिन यदि कवि की भाषा में 'हल्की मीठी चा-सा' हो तो क्या उसके साथ किन्हीं प्यारी बातों वाली सुबह की 'मीठी चुस्कियाँ' लेने को स्मरण में अधिक प्रियतर बनाना नहीं चाहते? 'किशमिशी गोरे मुसकराते दिन' का सुख धमनियों में फिर नया होकर नहीं जाग जाता? शमशेर के पास कविता के जो उपादान हैं, सौंदर्य-बोध को पाठक के अकथनीय बोध में तब्दील कर देने की जो अनूठी कला है उसे पारिभाषिक वर्गीकरण में बाँधना ज्यादती लगती है।

दरअसल रचनाकार की आलोचनात्मक शक्तियों में स्वानुभूति को परानुभूति में बदलने की सजगता भी प्रमुख है। शमशेर ने संभवत: यह जान लिया था कि उनकी रचना प्रक्रिया, आत्मान्वेषण के उनके उपादान और निगूढ़ सांकेतिकता संप्रेषण के स्तर पर दुरूह हो सकती है। परंतु रचना की सार्थकता तो तभी है जब वह पाठक के बोध का हिस्सा बने। इसमें कवि को भी अपनी सचेष्ट भूमिका निभाना चाहिए। ज़रूर यह कोई प्रायोजित सोच नहीं रहा होगा, एक सहज अंतर्क्रिया रही होगी परंतु इसी ने उनके काव्य में कुछ ऐसे गुण आविष्कृत किए जो अवबोधन को अधिक संभव करते हैं। इनमें 'पुनरावृत्ति' उनका अक्सर प्रयुक्त काव्य कौशल है। इसे कौशल इसीलिए कहा गया है कि शमशेर जब शब्द, शब्दांश या किसी भी उपादान का इस्तेमाल व्यर्थ या प्रदर्शन के लिए नहीं करते तब व्यर्थ पुनरावृत्तियाँ क्यों करेंगे। जहाँ-जहाँ उन्होंने ऐसा किया है वहाँ-वहाँ उनकी कविता के केंद्रीय अर्थ या संकेत खुले हैं जो संप्रेषण में अनिवार्य भूमिका निभाते है। एक जैसी पंक्तियों में किया गया आंशिक फेरबदल समूचे भाव या बोध को पाठक के लिए अद्भुत ढंग से सुलभ करा देता है। ऊपर हमने 'कठिन प्रस्तर में' कविता उद्धृत की है,

उसे ही देखें तो पहली पंक्ति में 'कठिन प्रस्तर में अगिन सूराख़' पंक्ति अंतिम पंक्ति में 'अगम अंतर में/ अनगिनत सूराख़-सी करती' के रूप में आवृत्त हुई है। अंत में 'कठिन प्रस्तर' की जगह 'अगम अंतर' है। और यही भेद, आवृत्ति और क्रियापद कविता की पूरी व्यंजना को पाठक की हथेली पर रख देता है (जिसका विश्लेषण ऊपर किया गया है) उनकी प्रसिद्ध कविता 'बात बोलेगी' में यह आवृत्ति देखिए:

'दैन्य दानव : काल
भीषण; क्रूर
स्थिति; कंगाल
बुद्धि; घर मजूर
X X
दैन्य दानव/ क्रूर स्थिति
कंगाल बुद्धि: मजूर घर भर।' *(बात बोलेगी/ वहीं संग्रह)*

जैसे ऊपर एकत्र और सघन स्थिति को यहाँ थोड़ा-सा बदलकर विस्तार दे दिया गया है और सूत्र को व्याख्यायित कर दिया गया है। ऐसे उदाहरण अनेक कविताओं में हैं।

कहते हैं कि कविताएँ भी परस्पर एक-दूसरी को आलोकित करती हैं। दो कविताओं के नमूने यहाँ देखिए जहाँ एक जैसी पंक्तियाँ, लगभग हू-ब-हू आवृत्त हुई हैं। जबकि दोनों कविताओं की विषय-वस्तु अलग-अलग है; संदर्भ अलग-अलग हैं, यहाँ तक कि उनके क्षेत्र भी अलग हैं। तब भी ये समान पंक्तियाँ ऐसी लगती हैं जैसे दोनों कविताएँ एक-दूसरे पर रोशनी डाल रही हों। पहली कविता है 'प्रभात' और दूसरी है 'योग' *(दोनों, चुका भी हूँ नहीं मैं' में पृ. 16 और 63 पर हैं।):*

'रवि
कमल नाल पर बैठा हुआ मानो
एक एड़ी पर टिकाए
मौन' (प्रभात)
X X
मैं कमल के नाल पर बैठा हूँ
एक एड़ी पर टिकाए मौन' (योग)

पहली कविता में प्रभात के सूर्य का किरण-बिंब धरती तक कमलनाल की तरह पहुँचा है, मानो सूर्य एक एड़ी पर खड़ा हो- योगी जैसा; जबकि दूसरी कविता में ध्यानस्थ व्यक्ति का प्राण, ध्यान-क्षण में, ऊर्ध्व मानस में सीधा (चक्रों को बेधता)

पहुँचा है (यों देखें तो किरण, सूर्य का प्राण ही है।) मानो वह कमल नाल पर बैठा है। (योग में और प्रतीक में भी कमल का अर्थ सुपरिचित है।)- जैसे कोई एक एड़ी पर (एकाग्र) मौन खड़ा हो- प्रभात के सूर्य की तरह। यह प्रकृति और जीवन की एक जैसी उदात्त अवस्था है। सर्वत्र प्रकाश फैलाने वाली तन्मय अवस्था में शेष संसार के बीच रहकर भी उससे ऊपर उठना होता है- जल में कमल की तरह। किरण की कमल- नाल के रूप में परिकल्पना का माध्यम भी जल में उसका प्रतिबिंब है। (शमशेर की एक अन्य कविता में, जल में हिलते सूर्य-स्तंभ का यहाँ स्मरण किया जा सकता है।) ध्यानावस्थित व्यक्ति प्राणों को जिस शीर्ष पर साधता है वहाँ ('योग' के अनुसार) सहस्रदल कमल है- एकदम भास्वर, खिला हुआ। सारा ध्यान यहीं केंद्रित होता है मानो कोई एक एड़ी पर (एकाग्र) खड़ा हो। इस अवस्था में सूर्य और योगी दोनों मौन हैं। सूर्य भी पिंड में स्थित है परंतु वह दसों दिशाओं में प्रकाश फैलाता है और योगी के प्राण शरीर में होते हुए भी निस्संग भास्वरता का चरम छू चुके हैं। दोनों एक जैसे अंशों को एक साथ देखने पर पता चलता है कि कवि-दृष्टि की प्रत्यंचा कितनी दूर तक खिंची है। यह मनुष्य और प्रकृति का बिंब-प्रतिबिंब बोध तो है ही; देशों और कालों में व्याप्त रचना की अविकल समाधि-भाषा भी है।(अगर शमशेर के भीतर पैठे कबीर और भारतीय साधना को कोई देखना चाहे तो यहाँ देख सकता है।)

शमशेर अपनी रचना के स्वरूप और मूल्यवत्ता के प्रति पूरी तरह सजग होते हुए भी एक ऐसे कवि हैं जो पाठक के प्रति अपने उत्तरदायित्व के बारे में सदैव चिंतित रहते हैं। वे आधुनिकता में मत्त हुए ऐसे कवि नहीं हैं जो अपनी झोंक में यह भी भूले जाते हैं कि रचना, पाठक के भीतर उतरे बिना सार्थक नहीं होती और कविता की जटिलता, सांकेतिकता या दुर्बोधता का अर्थ उसकी सम्प्रेषणविहीनता नहीं है। आख़िर शमशेर से अधिक जटिल कवि आधुनिक हिन्दी कविता में दूसरा कौन है। परंतु वह एक सहज कवि भी है, जो जटिलता को सहजता में बदल देता है। अपनी कविता को शमशेर ने ठीक ही पहचाना है :

'तारों-सी है मेरी बातें
दुर्बोध, अति सरल, अति दूर, अति निकट
पलकों में -*(नींद के तंग आकाशों की जमी हुई/चुका भी हूँ..)*

ये सारे गुण उनकी कविता में एक साथ हैं— एक दूसरे से संवाद रचते हुए। अपनी दूरी या दुर्बोधता को ही पास लाते या खोलते हुए शमशेर पाठक को संभाव्य अर्थ तक पहुँचाने की कोशिश करते हैं— संभाव्य अर्थ तक ही, निश्चित अर्थ तक नहीं; क्योंकि तब कविता से निकलने वाले उन तमाम अर्थों का अंत हो जाता है जो पाठक को कवि बनाते हैं। सर्जक अपने स्पर्श से पाठक को सर्जक बना दे इससे

बड़ी उपलब्धि कविता की नहीं होती।

शमशेर ने शिल्प के सभी द्वार खुले रख छोड़े हैं। उन्हें आधुनिकों की तरह न पारंपरिक शिल्प का उपयोग करने में हिचक होती है और न परंपरावादियों की तरह नई संरचना और अर्थवत्ता को सहज स्वीकार करने में। उनकी वस्तु ही नहीं, शिल्प की यात्रा भी बहुमुखी है। वे लिपि और हिज्जों तक से काव्य का काम ले लेते हैं। समस्त कलाओं-भाषाओं को कविता के उपादान बना लेते हैं, विचारों के बहुतेरे आयाम छूने की कोशिश करते हैं, प्रकृति और मानव सौंदर्य का कोई पक्ष छोड़ना नहीं चाहते। किसी शैली या रूढ़ि में बँधना उन्हें मंजूर नहीं। लिहाजा उनके यहाँ छंद, अलंकार भी उसी तरह निर्भय आते हैं जैसे आधुनिक प्रतीक-बिम्ब और अभिव्यक्ति प्रणालियाँ।

जिस चिमटी से सौन्दर्य और सच को पकड़ा जा सके और दिखाया जा सके, उसके इस्तेमाल से शमशेर चूकना नहीं चाहते। इसी कारण शमशेर के काव्य में रंगारंग विविधता है लगभग बोलती-बतियाती हुई। शमशेर के यहाँ 'तारे मिचमिचाते हैं', 'धूप व्योम में सीटियाँ बजाती है', चाँदनी में मिट्टी 'चिकनी चाँदी सी' दिखाई देती है, 'झरना उदास' हो जाता है, 'पीले गुलाबों का दरिया' आरपार फैल जाता है, आसमान 'नीला आईना' दिखता है, 'कत्थई गुलाब' और 'केसरिया साँवलापन' मोह लेता है, कटरों और बच्चों की साझा हवा 'मासूम कच्ची-सी ख़ुशबू' बिखेरती है,'बच्चों जैसा लाल वसंत' दौड़ा आता है। हर चीज़ अनोखी हरकत में, अपनी निजता के साथ कवि के सौंदर्य और संवेदन को भी धारण करती है। इन्हीं उदाहरणों में हमें कई क्षेत्रों और कालों के दृश्य दिखाई देंगे।

शमशेर के काव्य में अंतराल या स्पेस बहुत व्यंजक है। यह एक बात को दूसरी से अलग करने भर के लिए नहीं है, अनेक तरह से बोलता हुआ है। कई बार वह पाठक को आत्मान्वेषण का अवसर देता है, कई बार शब्दों की उपस्थिति से उत्पन्न होने वाली भाव संकुलता से बचाता है, कई बार भाव या अनुभूति को विकसित करता है, कई बार भावों को गहरा करता है, कई बार अतीत के प्रसंग को नए कथ्य से जोड़ता है आदि। कुल मिलाकर उनके अंतराल पाठक की रचनात्मक भागीदारी बढ़ाते हैं और कवि-कथन को नए सर्जनात्मक आयाम देते हैं। 'धूप कोठरी के आईने में खड़ी है' कविता के ये अंतराल देखें :

'मोम सा पीला
बहुत कोमल नभ

एक मधुमक्खी हिलाकर फूल को
एक नन्हा फूल
उड़ गई

आज बचपन का
उदास माँ का मुख
याद आता है।' *(कुछ और कविताएँ)*

कोठरी के आईने में धूप का उतरना, मोम-सा पीला कोमल नभ आदि माँ के उदास मुँह की याद दिलाते हैं। फिर आती है बचपन की स्मृति, माँ का कोमल स्पर्श और उसी उम्र में उसका जीवन से चले जाना। इसके लिए एक अलग बिम्ब है— कोठरी के आईने में धूप से अलग। नन्हे फूल को अपनी छुअन से थरथराता छोड़ मधुमक्खी के उड़ जाने का। मानो किसी नन्हें, सुकुमार व्यक्तित्व को अपने कोमल स्पर्श से संवेदित, रोमांचित कर कोई माधुर्य-कोश उड़ जाए (सहसा जीवन से चला जाए) पहला अंतराल माँ के उदास मुख के स्मृति बिम्ब को फ़्लैश बैक के क्षणों में बदलने का अवकाश देता या परिवर्तन सूचित करता है। दूसरा अंतराल उपस्थित बिम्ब और फ़्लैश बैक के झटके को एक सम्पूर्ण वेदनापरक स्मृति से जोड़ने के लिए है— जिसमें वेदना और राग दोनों एकत्र हैं। स्मृति और स्मृति-तंतुओं को अलग तरह से झंकृत करने वाली अनुभूति को अंतराल से कितना व्यंजक स्पर्श मिला है यह यहाँ देख सकते हैं। इनके स्थान पर यदि बात शब्दों में कही जाती तो शायद वह सूक्ष्मता और गहराई नहीं आती जो अंतरालों के कारण आई है। स्पेस शमशेर के सूक्ष्म, सांकेतिक और अल्पभाषी काव्य की बहुत-सी ज़रूरतें पूरी करता है और पाठक की स्वाधीन सक्रियता को अवकाश देता है। अंतराल के तमाम उदाहरण हैं, परंतु यहाँ एक ऐसा संदर्भ देना चाहता हूँ जहाँ एक ही शब्द के वर्णों के बीच अंतराल रचकर उसका अत्यंत सर्जनात्मक उपयोग किया गया है :

'बा दल अक् तू बर के
हल् के रं गीन् ऊ दे
मद् धम् मद् धम् रु क ते
रु क् ते - से आ जाते
इ त ने पास अपने' *(संध्या/ इतने पास अपने)*

यह पूरी कविता संगीत के नोटेशन जैसी लिखी गई है। शब्द के वर्ण पृथक् किए गए हैं— पाठ को धीमे पढ़ने के लिए, ताकि धीरे-धीरे हल्के-हल्के तैरते बादल का धीमा हल्कापन भाषिक गति के विलंबन में रूपायित हो। इस तरह कविता पढ़ते हुए आप बादल की गति आँख/और मन में महसूस कर सकते हैं, और उस विलंबित संगीत को भी जो इस समय प्रकृति में चल रहा है। साहित्य में 'पाठ' शब्द तो बाद में चला, शमशेर ने पहले ही कविता में पाठ की संभावनाएँ तलाश ली थीं। यह संभावना उन नक़लचियों और प्रयोग-बेसुधों से अलग है जो बिना कारण भाषा और वर्णों से अलग-अलग तरह का खिलवाड़ कर अपनी

असर्जनशीलता को ढकने का प्रयास करते हैं या क्यूबिक कविता के किसी अंधे अनुकरण में भाषा के व्याकरण को चौपट करते हैं; कविता को तो करते ही हैं।

आप देखेंगे कि यहाँ अंतिम दो शब्द नहीं तोड़े गए हैं, क्योंकि वे स्वयं एक निकटता को प्रकट करते हैं। आप यह भी कह सकते हैं कि संगीत की थाप की तरह आए हैं। पंक्तियों की योजना भी देखें, वे क्रमश: आगे बढ़ती हुई हैं— बादलों की गति की तरह। ज़ाहिर है कि यहाँ वस्तु, भाव, दृश्य आदि की बारीकियों को पाठक तक उसी अर्थ में सम्प्रेषित करने के लिए कलात्मकता की अंतरंग भागीदारी है। इसी संदर्भ में याद आनी चाहिए ये पंक्तियाँ जिनकी सच्चाई ऊपर के उदाहरण में प्रकट है :

'सब तुक एक हैं
यानी कि मेरा
ख़ून
x x
मगर
मेरी पसली में है-गिन लो
व्यंजन : और उसके बीच में है
स्वर
x x
क्योंकि वहाँ मेरा एक महीन युग-भाव है
वहीं— शायद मेरे लिए लिए मात्र
मेरे अनेक बिंबों के लिए मात्र
जिन्हें 'मेरे पाठक कहा जाय' मात्र। '

(एक नीला दरिया बरस रहा है/ खुका भी हूँ नहीं मैं)

यानी शमशेर के शिल्प में 'महीन युग भाव' है 'अपना समकालीन पाठक' है और भाषा का छोटा से छोटा प्रयोग भी उनके 'ख़ून' से लिखा गया है, वह उनके व्यक्तित्व का ऐसा अक्स है जिसमें कवि की पसलियाँ तक गिनी जा सकती हैं— उनका एक्सरे हो जैसे— ऐसे ही सम्पूर्ण मन-प्राण की आहुति से रची हैं शमशेर ने कविताएँ!

भाषा के कुछ प्रयोग शायद सामान्य पाठक को चौंकाते हों, या क्रीड़ा जैसे लगते हों, परंतु शमशेर के लिए वे कथ्य के अनिवार्य अविच्छिन्न भाग हैं। बिंदु, संयोजक, विभाजक जैसे अकाव्यात्मक व्याकरण-चिह्नों तक के उनके प्रयोग उनकी अपनी काव्य-भाषा है। 'एक नीला दरिया बरस रहा' कविता में ही इस तरह के अनेक प्रयोग हैं। पंक्तियों की जगह डैश के प्रयोग देखें :

स्व
—
—
— इत्यादि *(वही)*

ये डेश विलयनवादी काव्य के संदर्भ में हैं। इनसे 'विलयनवादी काव्य' के ढेरों भेद सूचित होते हैं, परंतु यह भी कि वे इतने निरर्थक हैं कि उनका जिक्र करना कवि उचित नहीं मानता, और अगर करे तब भी इत्यादि की लंबी शृंखला बच जाएगी। अवांछित काव्य-प्रवृत्ति का ज़िक्र करते हुए उसे निरस्त करने का यह नायाब तरीक़ा है और उनमें अपने पाठक को उलझाने या समय नष्ट करने से बचाने की सदिच्छा भी। बिन्दु आमतौर पर टूटे हुए को, या अंत में हों तो अनंतता को या अपूर्ण कथन को सूचित करते हैं, परंतु 'नीद' कविता के ये बिंदु दूरी की ओर इशारा कर रहे हैं :

'देखो— वोऽऽ.....
काजल की तलवार
डूबो पलकन धार।

देखो ओऽवोऽ.....
मर्म उघारे
चमक रहे हैं तारे' *(इतने पास अपने)*

पहले अंश में दूर पर नींद में डूबने का इशारा और दूसरे में दूर-दूर तारों की चमक की ओर। यहाँ अवसर्ग (ऽऽ) और ओ, वो बड़े आत्मीय ढंग के आग्रहपूर्ण संकेत हैं। प्रचलित अर्थ में भी बिन्दु के प्रयोग हैं। मसलन :

'एक ही चट्टान .... लहर पार लहर ..... पार .....'

यहाँ यद्यपि चट्टान और लहर तथा लहर और पार के बीच के बिन्दुओं के अर्थ और पार के बाद के बिन्दुओं के अर्थ थोड़े भिन्न हैं। एक जगह सोचने, दूसरी जगह विस्तार को सीमित अगली बात तक पहुँचाने और तीसरी जगह अनंत अपरिमित विस्तार के लिए बिन्दुओं का प्रयोग हुआ है।

कहा जा चुका है कि शमशेर कविता में कुछ भी व्यर्थ नहीं आने देते। व्यंजन के साथ स्वर के मौलिक संबंध भी यदि उनकी अभिव्यक्ति में नहीं अँटते तो वे उन्हें हटा देते हैं :

'झ्थप् थप् केले के
पत्तों पर हातों से
हाथ दिये जाय
थप् थप् थप्' *(धूप/ कुछ कविताएँ)*

हवा के थपेड़ों की यह ध्वन्यात्मकता स्वर के साथ सुरक्षित नहीं रह सकती थी, तो शमशेर का कवि क्यों रखता? गरज यह कि शमशेर शिल्प के जितने और जैसे उपादानों का प्रयोग करते हैं, वे उनकी कविता के अनिवार्य भाग हो जाते हैं। इनमें वे अकाव्यात्मक उपादान को भी काव्य-सत्ता दे देते हैं। जैसे एक सिद्ध चित्रकार मिट्टी, फूस, बुरादे, फटे क़ागज, किसी भी चीज़ से कलाकृति का निर्माण कर देता है, वैसे ही शमशेर भाषा के प्रत्येक उपादान का अपने काव्य के पक्ष में इस्तेमाल कर लेते हैं और इसके लिए उनमें पर्याप्त रचनात्मक साहस और दक्षता है, तभी अपने मूल चरित्र में वे जो भी हों, शमशेर की कविता में, कविता का अंग बन जाते हैं। लगता है शमशेर के यहाँ भाषा-मुक्ति, नई जनोन्मुख मुक्ति की ओर अग्रसर है।

शमशेर स्फीति के कवि नहीं हैं। लंबी कविता लिखते हुए भी वे स्फीत नहीं होते। 'अम्न का राग' उनकी लंबी कविता है। इसमें जो व्यापक वैश्विक परिवेश है; अनेक संदर्भ और दिशाएँ हैं वे कविता के विस्तार को स्फीत नहीं होने देते। विस्तार से अर्थ को निचोड़ कर सूक्ष्म बनाने की प्रवृत्ति भी इसमें यहाँ-वहाँ बराबर दिखाई देती है— यानी जहाँ भी कवि को मौक़ा मिलता है। एक नमूना लें। कई वैज्ञानिकों, कलाकारों, कवियों, मनीषियों का ज़िक्र करने के बाद वे एक पंक्ति में जैसे इस गणना को प्रयोजन दे देते हैं :

'एक एक मेरे दिल के जगमग पावर हाउस का
कुशल ऑपरेटर है।' *(बात बोलेगी)*

कवि का हृदय यों ही नहीं जगमगा रहा है, उसकी प्रेरणा और स्रोत हैं ये तमाम कवि-कलाकार-वैज्ञानिक-मनीषी; जो मनुष्य के हृदय में युद्ध के भयावह अंधकार में भी शांति का आलोक संचलित करते हैं। इसी तरह उनकी प्रसिद्ध प्रगतिशील कविता 'बैल' ले सकते हैं जहाँ बैल अंतत: समस्त मध्यवर्गीय समाज का प्रतीक बन जाता है और ढोने की मूक नियति या विवशता की अनुभूति से विकल कर देता है। व्याख्यानपरक विषयों को भी मार्मिक लक्ष्य की ओर ले जाकर वे उन्हें अधिक प्रखर और प्रभावी बना देते हैं। भाषाई या सांप्रदायिक एकता के लिए कैसी-कैसी भाषणनुमा कविताएँ लिखी जाती हैं! उनके मुक़ाबले देखें शमशेर की यह कविता— 'ईश्वर अगर मैंने अरबी में प्रार्थना की'। कविता काव्यार्थ को इतने कोणों और सम्मिश्रों में व्यक्त करती है कि उसकी मार्मिकता; विस्तार के पीछे नहीं रहती, देखें ये पंक्तियाँ :

'मुखसे नहीं.... उससे
भी अधिक उच्च घोषणा में
जो कि उनके कर्मों में
प्रसारित होती है।' *(चुका भी हूँ नहीं मैं)*

सम्प्रदायों या साम्प्रदायिकों के पूजा-प्रसंग को उनके कर्म के विलोम में रख वह जो सटीक व्यंग्यात्मक टिप्पणी यहाँ की गई है— किसी भी कविता को, अपने किसी भी आकार प्रकार में, सार्थक करती है।

यों, शमशेर रेह्टरिक के कवि नहीं हैं। प्रारंभ में उन्होंने लंबी रेह्टरिक कविताएँ भी लिखीं थी, परंतु अपने दो प्रथम प्रतिनिधि संकलनों 'कुछ कविताएँ', 'कुछ और कविताएँ' में उन्हें प्राय: शामिल न कर उन्होंने यह संकेत दिया है कि इनमें उनकी 'सृजनात्मक आत्मा' ठीक से प्रतिबिंबित नहीं है। क्योंकि वह मूलत: सूक्षम, सांकेतिक और संश्लिष्ट है। इसलिए ऐसी कविताएँ उनके विचारों और तत्कालीन आलोड़न-विलोड़न को समझने का माध्यम तो हो सकती हैं, उनकी सृजनात्मक आत्मा का नहीं। इसका यह अर्थ नहीं है कि वे 'रेह्टरिक काव्य' को कोई महत्त्व नहीं देते, वास्तव में वे 'महान रेहट्रिक कविता' के प्रशंसक हैं— जहाँ कवि की आत्मा का संबंध रेहट्रिक से है और जिनमें 'ओजस्वी ढंग से सामाजिक विचार' व्यक्त किए गए हैं। वे अनुभव करते हैं कि रेहट्रिक कविता तब 'महान' होती है, जब उसकी ज़िम्मेदारी 'स्वयं कवि की आत्मा' में हो, मात्र ओजस्वी शिल्प और अभिव्यक्ति क्षमता में नहीं। यानी वे सिर्फ़ रेह्टरिक के समर्थक नहीं हैं कवि की उस 'आत्मा' के समर्थक हैं, जिसकी परिणति इस माध्यम में होती है। इस तरह महज़ बड़बोली छंदोबद्ध अभिव्यक्ति को वे वास्तविक रेहट्रिक कविता से अलग करते हैं। उन्हें बराबर लगता है कि उनसे यह सधती नहीं है। संभवत: इस शिल्प का उनकी आत्मा से तालमेल नहीं है। और यदि ऐसा न हो तो वे उस शिल्प में क्यों उतरें? और जहाँ उन्हें आत्मा का ताल-मेल लगा है, उन्होंने गीत और छंदोबद्ध कविताएँ भी लिखी हैं। जबकि उस युग में छंद तोड़े जा रहे थे, गद्य की लय पर बहसें हो रही थीं लेकिन इसकी पर्वाह न करते हुए शमशेर ने 'निंदिया सताये मोहे संझही से सजनी' जैसे गीत, सॉनेट, ग़ज़ल, छंदबद्ध कविता, रुबाई आदि सब लिखे।

जब प्रेम और मर्सिया को धिक्कारा जाता था, उन्होंने प्रेम और मर्सिये डूब कर लिखे— बेधड़क। क्योंकि वे पहचानते थे कविता का मुक्त और बहुआयामी स्वभाव; वे वाद-विवाद में न पड़ कर शुद्ध मानवीय कविता लिख रहे थे— युगबोध की, मनुष्य-बोधकी, आत्म-बोध की। मुक्त छंद की कविता के लगभग सारे प्रयोग— यहाँ तक कि छंद में गद्य के प्रयोग और उसकी लय को या तो उन्होंने पहचाना था या अज्ञेय ने। उनकी कविता 'होली : रंग और दिशाएँ'। देखें छंद के ठहराव और गद्य की स्थिरता का यह कितना ख़ूबसूरत उदाहरण है :

'कई दृश्य
  मूर्त द्वापर
    और सतयुग

झाँकते हैं हमें
मध्य युग से
  खिलखिलाकर
माँगते हैं हमें :
हमने सर निकाला खिड़कियों से
  और हम
    गये।'   *(कुछ और कविताएँ)*

शमशेर की कविता के मुहावरे में हिन्दी काव्य-परंपरा के साथ उर्दू के मुहावरे का भी योगदान है जो स्वयं शमशेर के संस्कार की भाषा है और जो उत्तर भारत के जातीय संस्कार का अंग भी है। इसीलिए उनकी कविता में जन-जीवन की स्वाभाविक रंगत है। इसकी छटा ऊपर के कुछ उदाहरणों में देखी जा सकती है।

शमशेर की कला की विविधता और बारीकियों को कुछ पृष्ठों में समग्र रूप में आँकने और उदाहृत करने की कोशिश बेहद कंजूसी होगी। इसलिए इस प्रसंग को यहीं विराम देना ठीक होगा।

5

एक सम्पूर्ण कवि

कविता कहाँ बसती हैं? बच्चे की सरलता, ग्रामीण की जिज्ञासा, दार्शनिक की आँख, पक्षी की पाँख, निहत्थे की हिम्मत, धरती में बहती रोशनधारा, अंतरिक्ष की नीलाभा, आत्म-विस्मृति की जगत-खोज, वेदना, हँसी, विरलता, संधान, कशिश... कहाँ बसती है कविता?

कविता शमशेर में बसती थी, पूरी अस्मिता में; मन की गहन अखूट रक्त-धारा में, तन की तनहा बस्ती में; सृष्टि के निर्वस्त्र सौन्दर्य को कला के अंगरागों से सुवासित करने वाले आचरण में; आँख में, रग-रग में।

आधुनिक कविता में एक कवि ऐसा भी था (याद रहेगा) जिसके आगे आलोचना के सारे धड़े अपनी अहम्मन्यता छोड़ कर निरपवाद नतशिर थे। खुले इन्सान और खुले कवि में प्रतिबद्धता तलाश लेते थे। जबकि उतनी संवेदना हर बड़े कवि में रहने के बावजूद निहंगता से उसे प्रतिक्रियावादी कहने में लोग नहीं हिचकिचाए। शमशेर तो राग-कवि थे, अपने मूल कविता-स्वभाव में रोमेंटिक। रोमेंटिक मानी एकांतिक नहीं, पूरी दुनिया की बिरादरी को अपने में समेटे हुए। दूसरों से अलग इस अर्थ में कि उनकी कविता के लिबास निहायत महीन थे और बिना वायवी हुए उनका राग स्रवित जल की तरह था, उसके भीतर बुद्धि के सूक्ष्म कण चलते थे जैसे सूरज की किरण में अणु चलते हैं। अकादमिक रूढ़ आलोचना शमशेर की कविता को छूने का साहस नहीं जुटा पाई (उसने अक्लमंदी की) क्योंकि/या/ शायद उसे लगा, यहाँ हाथ डालना गोया ख़ुद को अप्रासंगिक बनाना होगा।

शमशेर की कविता के पास जो गया, डर कर नहीं, बल्कि इस तरह जैसे मंदिर में घुसने से पहले कोई देहरी के बाहर जूते उतार कर जाता है। मगर उस तरह भी नहीं कि भीतर जाकर मत्था टेकना है। निश्चय ही शमशेर की कविता

ने हिन्दी की श्रेष्ठतम सर्जनात्मक और समझदार आलोचना को भरसक निचोड़ा। (शमशेर से बेहतर शायद ही किसी आधुनिक कवि को समालोचना का ऐसा श्रेष्ठतम मिला हो) इसे शमशेर की कविता की ख़ुबी की तरह रेखांकित करना चाहिए। यह कविता आलोचना और पाठकीय आस्वाद के लिए एक आकर्षक चुनौती रही (रहेगी)। उससे पहले जूझना होता है, बेहद महीन अंदाज़ में, फिर उसके रंग में अपने रंग को समोना होता है— कोशिश करनी पड़ती है कि वह हासिल किया जाए जो उसका है या जो अपना है, फिर वह पुकारती है— इस समवेत से उत्पन्न नए अर्थ-बोध को, नए संसार और मौलिक संवेदना को।

शमशेर जो चाहते थे कविता में, ज़ाहिर है वह स्फीति में नहीं था, आवरण में भी नहीं, न ऐसी तन्हाई में जिसकी बस्ती न बसाई जा सके। तो इसके लिए चाहिए था उन्हें नया सूक्ष्म भाषिक संवेदन, अन्वेषण का कौमार्य, बिन्दु में सिंधु-सा अक्स और अछोर संभावनाएँ।

प्रतिभा की नुकीली धार के बावजूद दुनिया भर के लिए लबालब प्यार, लगातार बेचैन तलाश (हर स्तर पर) प्रदूषित संवेदना को बींधती हुई कोई एक कण-किरण, जो इस खोज को अर्थवान बना सके। शमशेर जानते थे कि खुली प्रतिभा-दृष्टि चीज़ों के अदृश्य, गोपन पहलुओं को देखने के लिए बहुत ज़रूरी है— अनिवार्य। हमारी भाषा को एक पूरा कवि मिला था।

उस छोटी-सी काव्य-गोष्ठी में, शायद त्रिलोचन कविता पढ़ रहे थे। उन्होंने शमशेर की याद की। एक बुजुर्ग ने, जो श्रोताओं के बीच बैठे थे, थोड़ा उचककर हाथ उठाया, गोया वह काव्य-गोष्ठी न हो, कोई तीसरे-चौथे दर्जे की क्लास हो! ये हैं शमशेर! शमशेर हैं ये!! आलोचकों ने जिनकी कविता के आस-पास ऐसा घेरा बाँध रखा है, मानो शमशेर के काव्य में बिना ख़ासी तैयारी के घुसा ही न जा सकता हो। पनीली आँखों वाले, सादा लिबास, एक चंचल-से अधीर इस बालक-बुज़ुर्ग को देखा— इतने पास अपने— तो धीरज बँधा। भीतर ही भीतर एक खिंचाव, बल्कि अपनापन-सा महसूस हुआ। नाम पुकारे जाने पर कुछ अस्त-व्यस्त उतावली में चश्मा सम्हालते हुए शमशेर कब मंच पर पहुँचे और घुटने मोड़कर बैठ गए, पता ही न चला। कवित्व का कोई नाटक नहीं, कोई लिबास नहीं, कविता फ़कत! मुक्तिबोध याद आये— "शमशेर के शिल्प का विकास काव्य-व्यक्तित्व से अटूट रूप से जुड़ा हुआ है"— मुझे तो वह शमशेर के कवि-व्यक्तित्व से भी जुड़ा हुआ जान पड़ा। कई बार पढ़ी हुई कविताएँ शमशेर से सुनकर उनके भीतर— गहरे उतर जाना आसान हो गया,गोया वह कवि न हो, कविता की सीढ़ी हो।

शमशेर की कविताओं की गूढ़ व्याख्याएँ हुई हैं, लेकिन वे इतनी ही नैसर्गिक, अधीर-सी, थरथराती हुई हैं मानो हाल के लिपे हुए गीले आँगन-जैसा सुबह का

आकाश। एक कमसिन कमनीयता, चंचल स्निग्धता शमशेर की कविता की गंध है। या वह एक शराब— हल्की-सी :

'नश्शा मुझे नहीं होता। नहीं होता
मुझे पीने वालों को
होता
है— मेरी कविता को
अगर वो उठा सकें और एक घूँट
पी सकें
अगर

इसलिए बस
मुझे वही शराब दो। बस! *(एक नीला दरिया/चुका भी हूँ नहीं मैं)*

शमशेर की कविता पारदर्शी काँच के प्याले की 'हल्की मीठी-सी' आँख और जीभ का स्वाद तो देती है, एक हल्की उत्तेजना और गर्मी भी देती है। वह इतनी नैसर्गिक और अपनी-सी है कि व्याख्या का ठोसपन उसे बर्दाश्त नहीं होता। कोई भी आलोचना कविता के मुक़ाबले में ज़यादा ठोस और कृत्रिम रोक-टोक-सी लगती है। क्योंकि किसी-न-किसी सीमा तक वह अनैसर्गिक हुए बिना नहीं रह सकती— कविता के मुक़ाबले में। शमशेर की कविता में जो नितांत निजता है, वह पाठक की निजता को भीतर से उकसाती है और कविता का एकदम ताज़ा और अपना-सा स्वाद देती है। वह कहीं-न-कहीं, भीतर का कोई बंधन खोलती है। शमशेर की कविता पाठक को बाँधती नहीं है, उसे, उसके राग को छू देती है— एक बहुत सधी हुई उँगली से छुई हुई वीणा की तरह। शमशेर की कविता को आलोचना के स्तर पर छूने से डर लगता है, कहीं मैली न हो जाए। ज़्यादा-से-ज़्यादा वह उस सौंदर्य के लिए 'भूषण पायंदाज़' का काम कर सकती है, या उसे यही करना चाहिए। मुक्तिबोध ने कहा था— 'शमशेर की आत्मा ने अभिव्यक्ति का एक प्रभावशाली भवन अपने हाथों तैयार किया है। उस भवन में जाने से डर लगता है— उसकी गंभीर प्रयत्न-साध्य पवित्रता के कारण।' लेकिन शमशेर का काव्य प्रयत्न-साध्य है ही कहाँ, वह भाव-साध्य है; और 'पवित्र' भी नहीं 'पावन'— शब्द का यह खुरदुरापन भी क्यों जुड़े शमशेर की कविता के साथ? 'कहा कविन पै कहहि न जाना'!

शमशेर को अपनी कविताओं के लिए मुक्तिबोध की तरह रचनात्मक और आलोचनात्मक श्रम प्राय: नहीं करना पड़ता, उनकी कविता, स्वयं भाषा लाती है—

अपने रंग और काट की। उन्हें श्रम नहीं करना पड़ता, क्योंकि उनकी कविता मूलत: 'विचार' नहीं, 'विज़न' है (हमने पहले भी उद्धृत किया है) :

'उसने मुझसे पूछा, इन शब्दों का क्या
मतलब है? मैंने कहा : शब्द
कहाँ है? ...
... क्यों फिर उसने मेरा संग्रह
अपनी धुँधली गोद में खोला और
मुझसे कुछ भी पूछना भूल गया? *(राग/ कुछ कविताएँ)*

स्टीफ़न स्पेंडर ठीक कहते हैं—

The difference between two types of genious is that one type (the Mozartian) is able to plung the greatest depth's of his own experience by the tremendous efforts of a moment, the other (the Beethovenian) must dig deeper and deeper in to his consciousness, layer and layer. What counts in either case is the vision which sees and purrues and attains the end; the logic of the artistic purpose. *(The Making of Poem, P. 48-49.)*

शमशेर की कविताएँ पाठक से अपने नितांत 'एकाकी क्षण' में यह कहते हुए पाई जाती हैं :

'मुझे
न मिलेंगे आप।
आपका
एकाकी क्षण हूँ...
आपका
एकाकीपन हूँ मैं।' *(मुझे न मिलेंगे आप/ कुछ कविताएँ)*

ये कविताएँ पाठक को अपने में लीन, बल्कि लय करती हैं। एक राग है शमशेर की कविता का, जो मन में उतार देता है अपनी गूँज— एक बहुत गहरी, निरंतर गहराई में उतरती चली जाती गूँज....ज....

'वही दरिया
और वो मुझे ले गया डुबो
जहाँ कि इन्तिहाई गहराइयों के सिवा
    और कुछ न था
एक इन्तिहाइयत... हाइयत
जो कि महज महज़
    मैं हूँ— और

कुछ नहीं
यहाँ। *(एक नीला दरिया/ चुका भी नहीं हूँ मैं)*

हम देख चुके हैं कि शमशेर की काव्य-आत्मा रोमांसिक है। उनके भीतर कहीं 'वर्णगीत का मर्म' छिपा हुआ है। उन्होंने ख़ुद कहा है— 'हमारे अंदर उनका (छायावादी कवियों का) प्रभाव, उनके व्यक्तित्व का प्रभाव, एकदम बहुत ही मंद नहीं हुआ है शायद कहीं-न-कहीं वह अंदर है, हम ज़्यादा उसके बारे में न कहें, लेकिन वह है।' शमशेर का पूरा काव्य, प्रेम के अंत:स्फुरण से रोमांचित है; एक तरह से उनकी पूरी काव्य-यात्रा ही प्रेम के भीतर 'मैं' की अमूर्त यात्रा है— बेठोस-सी चाँदनी के अंदर 'मैं' की तरह संचरित :

'एक नीला आइना बे-ठोस
बेठोस-सी यह चाँदनी
और अंदर चल रहा हूँ मैं,
उसी के महातल मौन में।' *(एक नीला आइना बेठोस/ कुछ कविताएँ)*

शमशेर ने सूक्ष्म संवेदनात्मक अंत:स्फुरणों और अनुभूति के 'आंतरिक' गुणों को काव्य-भाषा दी है और इस तरह छायावाद के आगे की राह तय की है। छायावाद की राग-भाषा अंतत: एक तकनीकी सामान्यीकरण जैसी हो गई थी। उसका आंतर स्पर्श कविता के भीतर वैसा अद्वितीय नहीं हो पाता था, जैसा शमशेर के यहाँ है। इसीलिए शमशेर अनुभूति की एक गर्मी, राग की एक अंतर्लय पाठक में जगा देते हैं, उनकी भाषा में हरकत है— पाठक में हरकत पैदा करने-जैसी। प्रेम का स्पंदन और धड़कन तक इन कविताओं में सुनी जा सकती है। उनकी भाषा सांस्कृतिक पवित्रता के बजाय राग की सादगी और पावनता है। शमशेर में वर्णन इशारे में बदल गए हैं, उनकी भाषा लथपथ नहीं करती; गंध की तरह, राग की तरह भीतरतम को छू देती है। कुछेक कविताओं को छोड़कर शमशेर के काव्य में मांसलता कहीं नहीं है; केवल संवेदन है, सूक्ष्म लेकिन अधिक जीवन्त हलचल लिए हुए। इस माने में छायावाद के बाद की व्यक्तिगत रागधारा के आगे उनके अपने होने की सार्थकता है :

'कौन उधर है जिधर घाट की दीवार... है?
वह जल में समाती हुई चली गई है,
लहरों की बूँदों में
करोड़ों किरनों
की ज़िन्दगी
का नाटक-सा : वह
मैं तो नहीं हूँ। *(आओ/ कुछ कविताएँ)*

निर्वैयक्तिकता का मतलब शमशेर के यहाँ व्यक्तित्व की अनुपस्थिति नहीं, उसका कविता में विलीनीकरण है।

शमशेर को हिन्दी में विशुद्ध सौंदर्य का अद्वितीय कवि कहा गया है। शायद इसलिए कि उन्होंने कविता को छायावाद के अंतर्वृत्त से भी मुक्त किया है (छायावाद ने उसे बहिर्वृत्त से मुक्त कर अंतर्वृत्त में सीमित किया था)। इस तरह शमशेर की कविता समस्त उपाधियों से रहित अपना अंतरंग और निजी रूप अभिव्यंजित करती है। शमशेर ने कहा है— 'अपनी कविता में मेरी ख़ास कोशिश रही है कि हर चीज़ की, हर भावना की जो एक अपनी भाषा होती है, जिसमें वह कलाकार से बातें करती है, उसको सीखूँ।' यही खोज और पड़ताल शमशेर को विशुद्ध सौंदर्य का कवि बनाती है और अनुकरण करनेवाले या किताबी कवियों से अलग करती है :

'आज अकेले किसके प्राण
मेरे कवि के! मेरे कवि के!
जिसने जीवन के सम्मान,
फूँक दिये आँगन में छवि के।' *(दो स्टैंजा/ उदिता)*

कलाकार के व्यक्तित्व के मूल में कोई एक चीज़, कोई कला-रूप होता है, वह उसकी रचनाशीलता के भीतर अमूर्त संचरित होता है। जैसे अज्ञेय के कर्तृत्व का मूल गद्य है, जैसे प्रसाद के सृजन के भीतर कविता संचरित है, वैसे ही शमशेर की कविता के भीतर उनका चित्रकार बैठा है। कई बार वह दिखता है, कई बार नहीं दिखता; लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वह वहाँ नहीं है। मुक्तिबोध का तो कहना यह है कि 'शमशेर ने अपने हृदय में आसीन चित्रकार को पदच्युत करके कवि को अधिष्ठित किया है।' शमशेर में ड्राइंग-पेंटिग के प्रति विशेष रुझान ही नहीं था, उन्होंने स्वयं ढेरों स्केच, पेंटिंग बनाए हैं। जो हो, यह बहुत साफ़ है कि शमशेर की कविता के चित्रों में उनका मनस्तत्त्व अधिक सक्रिय है, जिसके उपयोग से वे कविता में विलक्षणता पैदा करते हैं। कवि के मनस्तत्त्व की सक्रियता पाठक में भी संचरित होती है, और वह अपनी कल्पना के लिए कवि से एक छूट ले लेता है, या कहें, कवि उसे विशेष छूट देता है। अज्ञेय सूक्तियों से और मुक्तिबोध परिणतियों से जैसे पाठक को सीमित और बद्ध कर देते हैं, वैसा शमशेर नहीं करते। वैसे, कई बार शमशेर की कविता, चित्रों की अपेक्षा चित्रों की ओर उठी हुई उँगली लगती है।

शमशेर के भीतर सभी कलाओं के मौलिक संवेदन हैं, इस माने में उनका काव्य-जगत् कलाओं की 'सिंफ़नी' है। नतीजे में उनमें केवल रूप-वैविध्य ही नहीं, रूप-विन्यासों की विविधता भी है। (उनके भीतर जो सूक्ष्म लय-कंपन है, वह कविता में संगीत का संक्रमण है।) यह संगीत केवल शब्द में ही नहीं, वस्तुओं

और भावों में निहित मूल गीतात्मकता में भी है। संगीत और कविता और चित्र, शमशेर के भीतर एक-दूसरे में समाये हुए हैं :

'वह जो हमारे हृदय में बज रहा है
मैं उस साज में चाँद
देखता हूँ :
उसको पकड़ना चाहता रहा हूँ :
मेरी इस चाह के अलावा मैं कुछ नहीं—
कुछ नहीं।' *(सौंदर्य/ चुका भी हूँ नहीं मैं)*

जहाँ ऊषा के जल में स्तंभ हिलता है, जहाँ चाँदी के स्थिर जल में असित मूर्तियाँ हिलती हैं, वहाँ शमशेर का शिल्पकार सक्रिय है। क्योंकि शमशेर की '*आत्मा का भूगोल*' एक झीने, *पारदर्शी मानस* का भूगोल है, इसलिए स्थूल को बहुत कुछ सूक्ष्मच्छाय होकर ही वहाँ आने की अनुमति मिली हुई है। दो पहाड़ों को कुहनियों से ठेलता हुआ आदमी या तट पर पछाड़ खाती लहरें शमशेर की कविता में अपवाद की तरह हैं। यहाँ भी स्थूल बोध कम और ऐन्द्रिय अनुभूतियाँ अधिक हैं।

क्लासिकल होने की कोई संभावना कम-से-कम मैं तो शमशेर में नहीं देखता। क्लासिकल वे इसी माने में हो सकते हैं कि उनकी कविता सिर्फ़ आत्मपरक और सर्वथा निजी नहीं है; उसमें ऐसे तत्त्व भी हैं जो उनसे वैश्विकता और व्यापक संवेदन देते हैं। फिर भी जहाँ तक क्लासिक्स के अनुशासन का सवाल है, शमशेर उस अनुशासन में बँध नहीं सकते। 'मैं बिल्कुल इनडिसिप्लिंड हूँ। डिसिप्लिन से नहीं बँधता।' *(पूर्वग्रह 12-13, पृष्ठ 15)* उनकी कविताओं में अंतःस्रोत की जो तीव्रता और भावनाशीलता है, आदर्श की बजाय जो आनंदपरकता है, वह उन्हें रोमांटिक बनाती है— अभिजात नहीं। यदि उनका रुझान प्रगतिशीलता की ओर— कविता में— होता तो उनमें क्लासिकल प्रवृत्ति के विकसित होने की गुंजाइश भी थी, परंतु शायद उन्होंने अंतिम रूप से मान लिया है कि वे उनसे 'अच्छी नहीं' बन सकतीं—'प्रगतिशील रचनाओं के बारे में मेरे दिल में हमेशा संदेह रहा कि ये कविता के रूप में अच्छी नहीं बन पड़तीं शायद।' *(पूर्वग्रह 12-13, पृष्ठ 14)*

शमशेर के बारे में बात करते हुए हमेशा प्रगतिशीलता का सवाल क्यों उठता रहा है? शायद इसलिए कि वे सक्रिय रूप से कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़े रहे हैं। अपने वक्तव्य हमेशा वे प्रगतिवाद के पक्ष में देते हैं, लेकिन 'कविता उन्होंने बराबर लिखी जो प्रगतिवाद की कसौटी पर खरी नहीं उतरती।' साही का यह भी कहना है कि '*इनमें कोई पहलू दिखावटी नहीं है*' लेकिन मुक्तिबोध का शमशेर की इन सामाजिक और राजनीतिक कविताओं के बारे में कहना है कि 'मनोवैज्ञानिक वस्तुवादी कवि जब सामाजिक भावनाओं तथा विश्व-मैत्री की संभावनाओं से आच्छन्न होकर

मानचित्र प्रस्तुत करता है, तब वह उसी प्रकार अनूठा और अद्वितीय हो उठता है— जैसे कि उसी क्षेत्र में भिन्न तथा अन्य कवि कदापि नहीं।' यानी मुक्तिबोध की राय में शमशेर की आत्मपरक कलात्मक दृष्टि सामाजिक कविताओं को विशिष्ट बना देती है। निश्चय ही मुक्तिबोध ने यह महत्त्वपूर्ण बात कही है। लोगों के कहने से शमशेर को जो लगता रहा है कि ऐसी कविताएँ 'अच्छी' नहीं बन पड़तीं, तो शायद इसलिए कि वे राग और सौन्दर्य की कविता जैसी सफलता इन कविताओं में भी चाहते हैं; लेकिन क्योंकि एक तो दोनों के स्वभाव में भिन्नता है, और दूसरे शमशेर की आत्मा का अपना भूगोल रोमांसिक है, इसलिए नैतिक और बौद्धिक उत्तरदायित्व का अनुभव करने के बावजूद अभिव्यंजना के स्तर पर उनकी इस प्रकार की कविताएँ उतनी सफल दिखाई नहीं देतीं। दूसरे, यहाँ भी डिसिप्लिन का सवाल पैदा होता है, जो शमशेर की काव्यात्मा को बर्दाश्त नहीं है। एक तरह से देखा जाए तो उनकी प्रगतिशील कविताओं में जो स्वप्न, आशाएँ और संभावनाएँ भरी हुई हैं, वे उन कविताओं को भी रोमांटिक बना देती हैं, लेकिन यह रोमांस आत्मपरक नहीं, मानवीय या विश्वपरक है।

यह कैसे माना जा सकता है कि एक साथ दो विरोधी सच्चाइयाँ, जो एक दूसरे के संदर्भ में सच्चाइयाँ नहीं हैं, किसी कवि में एक साथ पाई जा सकती हैं? उसमें कोई एक सच्चाई संदिग्ध ज़रूर होगी। मैं यह बात अक्षरशः नहीं ले पाता कि 'कवि साधारणीकरण द्वारा जिस अनुभूति का प्रेषण करता है, वह काव्यानुभूति जीवनानुभूति से अलग होती है।' —ठीक है, अलग होती है रूप में, व्यंजना में, पर गुण में नहीं। शमशेर अगर मार्क्सवाद को ऑक्सीजन की भाँति अनिवार्य मानते हैं, जैसा कि रघुवीर सहाय का कहना है, तो कोई कारण नहीं है कि यह ऑक्सीजन उनकी कविताओं को प्राप्त न हो। शमशेर के संघर्षों को मनुष्य के स्तर पर भी देखकर किसी को उनकी बुनियादी ईमानदारी पर संदेह नहीं हो सकता। लेकिन कविता के रूप में इन संवेदनों का प्रतिफलित न हो पाना, या उतनी ही मार्मिकता से व्यक्त न हो पाना एक जटिल सौंदर्यशास्त्रीय समस्या को जन्म देता है, क्योंकि अंततः कविता ही तो कवि के संवेदनों की सच्ची कसौटी है! क्या शमशेर के बारे में कोई अलग कसौटी होगी? कसौटी अलग भले न हो, शमशेर की कविता पर एक अलग ढंग से बात करने की ज़रूरत अवश्य है। वह यों कि— शमशेर सम्पूर्णतः रोमांसिक कवि हैं और कवि होकर जो संवेदन उनके काव्य में उतरते हैं, वे ही वास्तविक हैं। लेकिन रोमांसिक होना संवेदित होना भी है— किसी गहरे और सांकेतिक अर्थ में। शमशेर की रोमानियत का उत्स पीड़ा है इसीलिए उनकी प्रगतिशील कविताओं में संवेदना की कमी नहीं है, उनमें कलात्मक सम्पूर्णता भले उतनी न हो, अनुभूति का अंतःसार और व्यक्तित्व का प्रसार है। अगर शमशेर ने अपने सौंदर्य का सर्वश्रेष्ठ प्रेम को दिया है तो जन-संवेदन का सर्वश्रेष्ठ सामाजिक कविताओं को। अलग-

अलग लिबास में उनका प्रेमी कवि यहाँ भी है, और वहाँ भी। वहाँ राग का एकांतिक उल्लास है और यहाँ राग का सामाजिक उल्लास और करुणा। शमशेर रोमांटिक कवियों से इस माने में भिन्न हैं कि उन्होंने राग की बद्धता के वे घेरे तोड़ दिए हैं, जो अपनी स्वच्छंदता के बावजूद रोमांटिक कवि बनाते रहे हैं। अगर इस दृष्टि से देखा जाए तो शमशेर की महत्त्वपूर्ण मानवीय और सर्जनात्मक भूमिका का पता चलता है।

ऊपर से टटोलकर उनकी कविताओं से यह निष्कर्ष निकालना कि वे 'वास्तविकता से काफ़ी भिन्न हैं' —अविचारित निष्कर्ष है और शमशेर की कविताओं से कोई निष्कर्ष निकालना वैसे भी मुश्किल है— और सतही दृष्टि से बिल्कुल नामुमकिन है। ख़ुद शमशेर के वक्तव्य से यह पता चलता है कि प्रगतिशील रचना उनके लिए परिश्रम-साध्य होती है। वे उसके लिए सहसा भाषा नहीं जुटा पाते। यानी अपनी आत्मपरक रोमांटिकता के विरुद्ध लड़ते हुए, बड़े परिश्रमपूर्वक उन्होंने समाजपरक कविताएँ लिखी हैं। ऐसा क्यों है? क्या शमशेर का यह कथन प्रगतिशील रचनाओं के उस उत्तरदायित्व में दख़ल पैदा नहीं करता, जो जीवन और कविता दोनों से एक जैसे आचरण की अपेक्षा करती है? या ऐसा तो नहीं है कि यह प्रगतिशील कविता की सपाटबयानी के ख़िलाफ़ एक गहरे कवि के संघर्ष को सूचित करती हो? असल में, प्रेम और सौंदर्य जितना स्वयंप्रभ होता है, उतनी प्रगतिशीलता नहीं होती। मुक्तिबोध केवल प्रगतिशील कविता लिखते रहे, तो शमशेर की सौंदर्यपरक कविताओं की तरह फ़्लैश में नहीं— उन्हें कविता पाने के लिए और उसे व्यक्त करने के लिए कितना कड़ा संघर्ष करना पड़ता था? इसलिए शमशेर की यह पीड़ा किसी विरोधाभास को सूचित नहीं करती, वास्तव में यह अपने आप से गहरी प्रगतिशील रचना की मांग है; और क्योंकि शमशेर में प्रेम सौंदर्य फ़्लैश में उतरता है, इसलिए प्रगतिशील रचनाएँ लिखते समय उन्हें एक अलग अनुभव होता है, जो स्वाभाविक है। इसका अर्थ यह नहीं कि वे अपनी प्रगतिशील रचनाओं से जितने निराश दीख पड़ते हैं, वास्तव में वे ऐसी हैं— बल्कि वे उसमें कुछ और ताक़त, कुछ और गर्मी, कुछ और गहराई पैदा करना चाहते हैं।

शमशेर की कविताएँ पाठक को दुरूह लगती हैं। क्योंकि उनकी कविता का अर्थ उन वर्णनों और चित्रों में नहीं मिलता जो कविता में दिखते हैं; बल्कि उन संकेतों और इशारों में होता है, जो कविता के भीतर शब्दों, वाक्यों के नितांत निजी संघटन या आत्मा के भीतर से ध्वनित होता है। उनके भीतर बसे चित्रकार ने भी उनकी कविता को ज़टिल बनाया है। इस मुद्दे पर हम पहले लंबी बहस कर चुके हैं। यहाँ केवल इतना ही कि कविता से जो सीधे-सीधे अर्थ ग्रहण करने का हमारा स्वभाव है वह शमशेर की कविता से प्रत्याख्यात होता है। शमशेर के काव्य-स्वभाव, कला की 'सिंफनी' और राग के आयामों द्वारा, नैसर्गिक आंतरिक चेतना के सहारे उनकी कविता का अर्थ पाया जा सकता है। उनकी कविताएँ बौद्धिक आत्मपरकता या प्रज्ञापरक आत्म से नि:सृत हैं। वे हमारे अनुभवों, ऐन्द्रिय प्रशिक्षणों, आत्मिक संवेदनों की अपेक्षा करती हैं, महज साधारण समझ और काव्य-बोध की नहीं।

6
शमशेर का गद्य

हृदय के हाथों लिखा

निबंध

अपनी कहानियों के बारे में शमशेर लिखते हैं :

'मेरी कुछ कवितानुमा कहानियाँ हैं— लेकिन देखने की बात यह है कि अनेक विधाओं में काम करने वाला आदमी मुख्यत: किस विधा में सक्षम है।' –*(सामाजिक सत्य और रचना का माध्यम/ कुछ और गद्य रचनाएँ)*

कहानी के बहाने शायद शमशेर कहना चाहते हैं कि उनकी गद्य-विधाएँ पढ़ते हुए यह ध्यान रखा जाए कि ये कवि की गद्य रचनाएँ हैं। उनमें निहित भावात्मक, भाषिक, शिल्पगत और कहीं-कहीं लिरिकल जैसे कवित्व गुणों को भी मूल्यांकन में शामिल किया जाए (संभवत: यहाँ गद्य-विधाओं के अनुशासन से अपने लिए थोड़ी छूट की उम्मीद भी की गई है।) यानी शमशेर के गद्य का एक प्रमुख तकनीकी मुद्दा गद्य में कविता के समावेश का है।

छठें-सातवें दशक में कविता में गद्य और गद्य की लय को लेकर बहुत बहसें हो चुकी हैं। उसी तरह गद्य में कविता के समावेश पर भी बहुत सवाल उठे हैं। यहाँ यह कहना पर्याप्त होगा कि कविता में गद्य का फ़ॉर्म या रूप अवश्य आया है परंतु वहाँ उसकी गतियों, लयों और अनुभूतिपरक अंतर्क्रियाओं में जो बदलाव होता है वह गद्य की प्रकृति को बदल देता है। यानी गद्य आकृति में आया है, प्रकृति से प्राय: नहीं। परंतु कविता जब गद्य में आती है, तो रूप में वह उतनी नहीं होती जितनी गुण और स्वभाव में होती है। इसलिए यहाँ इसके होने पर गंभीरता से विचार करना आवश्यक है। वास्तव में कविता गद्य में उसी सीमा तक उचित होती है, जिस सीमा तक वह गद्य में विचलन पैदा करते हुए भी विधा से की

गई अपेक्षा से यथासंभव मेल खाती हो। शमशेर के गद्य से यह प्रश्न करना उचित भी है क्योंकि उनकी कविताओं में गद्य की रूपगत उपस्थिति होने पर भी गुणात्मक उपस्थिति नगण्य है (क्योंकि वे मूलत: कवि हैं।) जबकि उनकी गद्य रचनाओं में गुण की दृष्टि से भी कविता की उपस्थिति रेखांकित की जा सकती है।

यह उल्लेखनीय है, क्योंकि गद्य रचनाएँ तो अन्य कवियों ने भी लिखी हैं, परंतु उनके कवित्व से प्राय: उनकी सृजनात्मक विधाएँ प्रभावित हुई हैं। जैसे जयशंकर प्रसाद के नाटक और कहानियाँ, अज्ञेय के कहानी-उपन्यास, यात्रा वृत्त; मुक्तिबोध की कहानियाँ, उपन्यास, डायरी उनके कवित्व से (जिस भी स्वभाव का वह है) प्रभावित हुई हैं। परंतु विवेचन और विश्लेषणपरक गद्य लिखते हुए वे अपने कवित्व को प्राय: दूर रखते हैं। कवि होने का प्रभाव यदि ऐसे गद्य पर देखा जाए तो वह अक्सर अकादमिक रूढ़िभंजन या स्वतंत्र-आत्मनिर्भर चिंतन में देखा जा सकता है। परंतु शमशेर अपने आलोचनात्मक और वैचारिक निबंधों में; यहाँ तक कि पुस्तक-आकलन में भी कविता के लिए पर्याप्त छूट लेते हैं। वे 'साहित्य के अध्ययन की सजीव अनुभूति' का 'प्रतिबिंब' पाठक के मन में गद्य के द्वारा वैसा ही उतारना चाहते हैं जैसे किसी प्रेम या सौन्दर्य की अनुभूति का।— उनके आलोचनात्मक गद्य का उदाहरण देते हुए रामविलास जी यह भी कहते हैं कि, 'यह एक कवि का गद्य है' और मूल्यांकन के मामले में कवि का हस्तक्षेप इस हद तक है कि कहीं-कहीं वह आलोचना के औचित्य को भी लाँघ जाता है परिणाम स्वरूप उनके गद्य के प्रशंसक (और वह प्रशंसा के योग्य तो है ही) रामविलास जी को भी उर्दू कवयित्रियों और हिन्दी काव्य के मूल्यांकन के संदर्भ में कहना पड़ता है कि— 'उर्दू के विकास की जो बातें शमशेर ने कही हैं, वे पूरी तरह सही नहीं हैं, हिंदी काव्य की जो झलक उन्होंने दी है वह भी ग़लत है। पर इससे उनकी आंतरिक प्रवृत्तियों का पता चलता है।' इसमें कोई शक नहीं है कि शमशेर की समस्त गद्य-रचनाओं पर उनके कवि-व्यक्तित्व और अंतर्वृत्तियों की छाप है, अगर आश्वस्त करती है तो यह बात कि हर जगह विश्लेषक, विवेचक और अध्ययनशील चिंतन कवित्व से आक्रांत नहीं है। वह विचार करने को बाध्य करता है और अनेक जगह आश्वस्त भी।

यह सिर्फ़ उनकी वजह से नहीं विधा की वजह से भी हुआ है क्योंकि माँग सिर्फ़ कलाकार की नहीं होती, कला या विधा की भी होती है। हर विधा लेखक को अपने स्वभाव में ढालने के लिए संघर्ष करती है। इसलिए भले ही कवियों की गद्य रचनाएँ, गद्य लेखकों से भिन्न होती हों, परंतु गद्य की मर्यादा में बँधने को भी वे किसी न किसी हद तक बाध्य होते हैं, क्योंकि यदि उन्हें उस माध्यम की ज़रूरत न होती तो वे उसे क्यों अपनाते, कविता ही न लिखते रहते। और यह भी सच है कि विधा की मर्यादा को एक विश्वसनीय सीमा तक स्वीकारे

बिना, उस विधा में लिखना ही व्यर्थ हो जाता है। शमशेर का गद्य— विशेषत: निबंध, इस बात के प्रमाण हैं कि अपने को व्यवस्थित गद्य लेखकों की श्रेणी से अलग पहचानने के आग्रह के बावजूद वे निबंध-विधा का शक्तिभर निर्वाह करते हैं। यही कारण है कि वे विवेचनात्मक, विश्लेषणपरक और सार्थक वैचारिक निबंध लिखते हैं। शमशेर इस विधा के प्रति अतिरिक्त रूप से सतर्क भी हैं और जहाँ कहीं उन्हें लगता है कि वे इसकी मर्यादा का निर्वाह नहीं कर पा रहे हैं— वहाँ वे उसे अलग नाम देते हैं। (यह विधा के प्रति उनके उत्तरदायित्व और ईमानदारी का प्रमाण है।) इसका एक दिलचस्प उदाहरण है 'एक बिलकुल पर्सनल एसे।' इसमें शमशेर ने अपने समकालीन, और अनेक नवोदित कवियों पर टिप्पणी की है। क्योंकि यह निबंध 'बिलकुल पर्सनल' है, इसलिए इससे आप आलोचनात्मक निबंध के अनुशासन, तथ्यपरक भाषा, तटस्थता, प्रमाण आदि की अपेक्षा नहीं कर सकते! यह लेख निश्चय ही सूत्रात्मक, व्यंजक, संवेदना से भरा और मार्मिक है— और इसमें यथासंभव आलोचनात्मक विवेक भी है, परन्तु 'पर्सनल एसे' के तेवर में लिखे जाने के कारण आत्मपरकता, कविता की अंतर्योजना, लालित्य, व्यंग्य, प्रेरणा, सलाह आदि भी देखते ही बनते हैं। आप भी देखें :

त्रिलोचन : 'लँगोट कसे हुए साँस बाँध कर देर तक गोता लगाने वाला एक शांत व्यक्ति चुपचाप आकर हमारी हथेली पर जो कुछ रख देता है वह बड़ा सामान्य लगता है ... मगर वह 'सामान्य' ऐसा सामान्य नहीं जैसा कि लगता है।'

प्रभाकर माचवे : मैं उन्हें आधुनिक कविता का एक गंभीर विदूषक कह सकता हूँ— हल्का और गंभीर एक साथ।

अज्ञेय : अज्ञेय को मैं चुपचाप अपना फ़ेवरिट कवि मानता हूँ।... प्रत्येक युग ऐसे ही कलाकारों और शिल्पियों की प्रतीक्षा करता है जो अपनी महान और गहन अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में सरल से सरल हो।... व्यापक और गहरी सुरुचि, जिस पर भरोसा किया जा सकता हो।

केदारनाथ अग्रवाल : एक होता है कविता का मर्म, शब्द जिसका मात्र माध्यम होता है : वह मर्म जैसे चमकती हुई आँख रखता हो— स्पष्ट, गंभीर और सहज-तरल। केदार उसी को खोजता है।

शंकुत माथुर : उनकी शैली में जो कुछ 'सुर्रियलिस्टिक' है, वही (चूँकि सपनों की तरह कुछ बच्चों के हँसी या चुटकुलों या पहेलियों की तरह स्वाभाविक है न) मुझे ख़ामख़ा आकृष्ट कर लेता है। फिर चाहे उसमें कुछ न हो। मगर क्यों न हो?

धर्मवीर भारती : 'उनके 'अंधायुग' में उनके युवा काल का आवेश है और वह आवेश पूरी शक्ति के साथ उसमें व्यक्त हुआ है, लेकिन वह सचेत

रूप से प्रगतिवाद-विरोधी स्टैंड लेकर लिखा गया है। और मेरे देखते इस गलत दृष्टि या विचारधारा का प्रभाव उनकी रचना-प्रक्रिया पर यह पड़ता है कि वे 'अंधा युग' लिखने के बाद लगभग चुक जाते हैं।'

नागार्जुन : जिसके कण-कण में अपने देश की मिट्टी का सोंधापन महसूस होता है। उसके शब्द बड़ी पोढ़ी उँगलियों से हमारी चेतना को पकड़ते हैं।

मुक्तिबोध : उनकी कविताएँ स्थिर चित्रों का एक आतंकित करने वाला ग्रिम (Grim) होती है।

नरेश मेहता : एक प्रकार का रंग चटक और आउटलाइनें साफ़ और मजबूत होती हैं। भावना दृढ़ पैनी। सृजन चेतना का आवेश बेहद सच्चा और पुण्य।

(कुछ और गद्य रचनाएँ)

स्पष्ट है कि ये टिप्पणियाँ एक आलोचक की नहीं, कवि-आलोचक की हैं, जिनमें मूल्यांकन वस्तुगत ही नहीं, आत्मगत भी हुआ है— जो गहरी संवेदना, काव्य-मर्मज्ञता, उदारता, सहिष्णुता आदि की ज़िंदा मिसाल है। (और यह उनके प्राय: सभी मूल्यांकनपरक लेखों में कमोबेश है, यहाँ कुछ अधिक ही है) इससे उनके आलोचनात्मक लेख, सृजनात्मक कृति का सुख देते हैं और बहुत खुला-बड़ा रचना-बोध भी। अंग्रेज़ी, उर्दू आदि का व्यापक अध्ययन, मार्क्सवादी विचार-भूमि, चिंतनशीलता, परंपरा-बोध और प्रतिभा से पल्लवित उनके निबंधों में आधुनिक साहित्य की समझ विकसित करने का अद्‌भुत गुण है। अपने लिए मर्यादा का वरण करते हुए भी उनका कवित्व उन्हें किसी बाहरी साँचे में बँधने नहीं देता। उदाहरण के लिए वे मार्क्सवाद के प्रभाव के साथ भारतीय परंपरा, इतिहास और रचना की स्वायत्त अस्मिता को भी नहीं भूलते। इक़बाल, लुई अराँगा, अज्ञेय, अश्क, गालिब, निराला, कैफ़ी आज़मी, नरेन्द्र शर्मा, पंत, केदारनाथ अग्रवाल, मुक्तिबोध आदि पर लिखे उनके निबंध कवियों के अलावा समय, इतिहास, काव्य-बोध की प्रणाली, काव्य-गुण, रचना-धर्म, सहिष्णुता आदि के बारे में भी एक तरह से पाठक को दीक्षित करते चलते हैं। इस संदर्भ में उनके काव्य-संग्रहों की भूमिका का भी स्मरण करना चाहिए, जहाँ अनेक आत्म-स्वीकारों के साथ काव्य, परंपरा, संस्कृति आदि के विषय में भी बहुत कुछ है। उदाहरण के लिए, संस्कृति के संबंध में उनकी टिप्पणी है :

'हमारी संस्कृति ज़िन्दगी के हर मोड़ पर अगर हमारा साथ नहीं दे सकती, हमारी आँखों के आगे का रास्ता पहचानने की रोशनी और दुनिया के कोने-कोने तक ज्ञान और वैभव और प्रेम के जन-तंत्र, डेमोक्रेसी का भोग करने की शक्ति हमसे छीनने लगती है, तो समझ लीजिए हमारे पुरखों का सत् हमारे ख़ून से निकल गया, और यकीन कीजिए कि हम अपनी संतान को

उन नीचाइयों में पीछे ढकेल देना चाहते हैं, जिनसे उठकर हमारे पुरखे ऊपर आए थे। .... पुरानी संस्कृति का आज के जीवन में जो ज़िंदा मतलब है वह यही है, वर्ना कुछ नहीं। इस सच्चे मतलब को ढँकने वाली कला एक झूठा आडम्बर है; वह ऊपर से पहली नज़र में चाहे जितनी ख़ूबसूरत लगे।' *(सीधे अपने पाठक से/ उदिता, पृ. 106)*

ऐसी स्पष्टोक्ति और विवेक से उनकी टिप्पणियाँ, लेख आदि जीवन और साहित्य का रास्ता दिखाते हैं।

उनके कवि ने उनके गद्य में जो महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है, वह है उसे खुला आकाश देने की । वे बराबर भारतीय कवियों और लेखकों की तुलना विश्व के कवियों-लेखकों से करते हैं, जैसा उन्होंने निराला, मुक्तिबोध आदि के संदर्भ में किया है। उनका यह सोच अत्यंत तर्कसंगत है कि हम अपने साहित्य को यदि दुनिया के बीच रखकर नहीं देखेंगे तो हमारी अपनी स्थिति का कैसे पता चलेगा। हिन्दी-विवेचना के लिए यह दृष्टि मूल्यवान है। इतना ही नहीं, वे किसी रचनाकार पर बात करते हुए ,ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक स्थितियों का भी जायज़ा लेते जाते हैं। *मुसद्दस* और *भारत भारती* की तुलना करते हुए यदि वे भारतेन्दु युग तक जाते हैं और हाली के समय और गुप्त जी के समय के साथ उनकी काव्य-दृष्टियों और परंपराओं पर विचार करते हैं तो लगता है कि सचमुच तुलनात्मक अध्ययन के लिए कितने बड़े दायरे की ज़रूरत होती है। उनके विचार की रेंज का पता मुक्तछंद पर लिखे उनके लेख से भी लगता है जहाँ वे ठेठ भारतीय परंपरा से चलकर, देश-विदेश की यात्रा करते हुए इतालवी कवियों की छंद मुक्ति में 'वायुयान और युद्ध की स्पीड' तक देखते हैं। संभवतः इस व्यापक दृष्टि से हिन्दी में साहित्य का मूल्यांकन और अनेक समकालीन प्रश्नों पर कम विचार हुआ है।

क्योंकि शमशेर अपने भीतर के कवित्व की प्रबलता पहचानते हैं, इसलिए वे वस्तुगत मूल्यांकन के लिए उससे भीतर ही भीतर संघर्ष करते हुए भी प्रतीत होते हैं। वे तटस्थता और सामाजिक बोध को जाग्रत रखते हैं और साहित्य तथा समय की व्यापक यात्राओं का सार्थक उपयोग करते हैं। इस कारण वे एकांगी होने से काफ़ी बच पाए हैं। वरना प्रगतिशील विचारों से प्रभावित होकर भी वे भिन्न विचारों के रचनाकारों पर इतनी उदार और सटीक आलोचना शायद ही लिख पाते और न अपने विचारों की उन संभावनाओं और सीमाओं को उन रचनाकारों के भीतर पहचान पाते जो उच्चकोटि की सृजन-विभूति से सम्पन्न हैं। अपने को और अपने रचनाकार को जाँचने का सृजन एक उचित मंच होता है। उदाहरण के लिए, सुमित्रानंदन पंत पर लिखे उनके निबंध को ले सकते हैं। शमशेर जी पहले उनके काव्य-सौन्दर्य, उनकी करुणा, 'आरक्त प्राणों के बीज' और अन्य विशेषताओं पर गहरी मार्मिकता से बात करते हैं। इसके बाद जब वे यह प्रश्न उठाते हैं तो कितने

सही और तात्त्विक लगते हैं कि', पंत जीवन में क्या चीज़ पकड़ कर चल रहे हैं, जिसके सहारे हम भी उनके साथ चल सकें।' कवि के साथ आलोचक की सहयात्रा में क्या चीज़ छूटी जा रही है, इसकी कमी अनुभव करते हुए वे पंत की तमाम तरह की आलोचना और पल-पल परिवर्तित वेश की चर्चाओं से आगे बढ़कर उनसे यह मौलिक प्रश्न बड़ी ही बारीकी और सुझावपूर्ण ढंग से शायद पहली बार पूछ रहे हैं। ऐसे ही संकेतों में शमशेर की सामाजिक दृष्टि का पता चलता है और उस सच्चे आत्मान्वेषण का भी जो रचना की सहयात्रा में वे स्वाभाविक रूप से करते रहते हैं। अन्य रचनाकारों पर चर्चा करते हुए जहाँ शमशेर ने अपने कवि और रचनाकार का भेद खोला है, वहीं उनकी आलोचना के बहाने आत्मान्वेषण और शायद आत्मालोचन का भी। बच्चन, नरेन्द्र शर्मा आदि के बारे में अपने युवा काल को 'आदर्शवाद' से दबाने के बहाने या कवियों के शिल्प-मोह आदि की चर्चा करते हुए या सामाजिकता और एकांत संसार पर टिप्पणी करते हुए कई बार लगता है कि वे उनके भीतर अपने को खोज रहे हैं— शायद अपनी ख़ूबियों और ख़ामियों को। यहाँ बरबस उनका जीवन, उनके आदर्श और अक्सर महसूस किया और चाहा गया 'एकांत' (I always want a quite corner) याद आ जाता है। लगता है कि गद्यकार एक तरफ़ कवि की और दूसरी तरफ़ पाठक की उँगली पकड़कर बीच में, साथ-साथ चल रहा हो। समीक्षा से उत्पन्न यह बोध असाधारण है।

आलोचनात्मक गद्य में शमशेर अपने ख़ास लहजे के साथ आलोचना की धीर-गंभीर भाषा का उपयोग करते हुए स्पष्टता का निर्वाह करने की कोशिश और सामर्थ्य दोनों का पता भी देते हैं। कभी-कभी वे इस तरह भी लिखते हैं— 'इक़बाल के पद्य नाना संकेतों से पूर्ण हैं, अनेक संचारी भावों से पुष्ट हैं, श्रेष्ठ तथा अत्यंत सजीव कल्पना-शक्ति से अनुप्राणित हैं, चमत्कारपूर्ण शब्द विन्यास से सुसंस्कृत और अलंकृत हैं, ओजस्विनी भाषा के प्रवाह से गम्भीर हैं।'— कोई नहीं क़ह सकता कि यह विधिवत दीक्षित आलोचक की भाषा नहीं है। केदारनाथ अग्रवाल के संग्रह 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' की शायद सबसे अच्छी और लंबी समीक्षा शमशेर ने ही की है। केदार के अनेक गुणों का हवाला देते हुए उन पर ऐसी स्पष्ट और सुझावपरक टिप्पणियाँ भी करते हैं : ('चोट पर चोट सहे' उद्धृत करते हुए) 'चोट पर चोट सहते सहते' अधिक शुद्ध होता। कभी-कभी शब्दों का जोड़ (कम से कम मुझे) अनमिल-सा लगता है। जैसे *गायक पखेरू* या *रात-दिवस*'... 'हमारी आँख जहाँ जिस फूल को देखती है' में किंचित अतिरिक्त-सी भावुकता है, भावना का विज्ञापन-सा; एक स्टेटमेंट है; इसीलिए रचना ललित काव्यमय गद्य मात्र होकर रह गई है। ...केदार की अभिव्यक्ति में यह भोलापन (Naivite) कभी-कभी उनके तथ्य को सपाट और प्रभाव-हीन कर देता है, जैसे लेखक की स्वतंत्रता (पृ. 79) में। *पूरी कविता मात्र स्टेटमेंट है।*'

अपने समकालीन रचनाकारों से ऐसा विचार-विमर्श उनकी आलोचनापरक तटस्थता के साथ संवेदशीलता को भी प्रकट करता है। सुभद्राकुमारी चौहान पर उन्होंने कहीं बहुत भावुक होकर लिखा है, लगता है सुभद्रा जी की कविता, उत्सर्ग, समय और शहीदों के 'आँसू और ख़ूँ' के रंग में शमशेर की लेखनी सन गई है। परंतु इसी संदर्भ में उन्होंने जो मौलिक प्रश्न उठाए हैं, वे उनकी सर्जनात्मक चिंता और इतिहास-दृष्टि का भी कुछ पता देते हैं। और लगता है कि कहीं वे स्वयं के कार्यकर्ता न होकर सिर्फ़ कवि होने का बचाव भी कर रहे हैं। (क्योंकि वे अक्सर कहते हैं— 'मैं केवल मात्र आइडियालॉजी से हमेशा सोशल रहा') निबंध का अंतिम हिस्सा उद्धृत करना चाहिए :

> '... वह समय भी आया जब आख़िर कलाकार ने आदर्शवादी सत्याग्रही के साथ समझौता कर लिया।
>
> मगर इससे भी विरोध हल न हो सका जो अनजाने रूप से उनके पूरे संघर्ष के पीछे छिपा हुआ था। देश-सेविका का आदर्शवाद (चाहे जिन मजबूरियों के कारण) कलाकार की उपेक्षा कर आगे बढ़ जाता है। मानो वे दो थे, एक को छोड़ना ज़रूरी था। ....
>
> ऐसे संघर्षकर्ताओं को एक शहीद होने वाले का-सा एकाकी अलौकिक सुख प्राप्त होता है, निश्चय एक मुक्ति-सी : उसके उदार, महती भावुक उत्सर्ग को हम कविता की तरह हृदय से लगाते और प्यार करते हैं और उसकी गरिमा के आगे नतमस्तक होते हैं। मगर फिर भी वह सुख-सम्मोहन, वह एकाकी अलौकिक स्वर्ग हम औरों के दरिद्र जीवन से कुछ बाहर की ही चीज़ रहता है। वह हमें विकल करता है अवश्य, पर हमारे जीवन के अंदर पुष्ट और साकार नहीं होता। हमें मुक्ति का आलोक मिलता है, मुक्ति नहीं; सरल, ठोस, मुक्त जीवन नहीं। हल्दी घाटी के राणा प्रताप, वाटरलू के नेपोलियन और झाँसी की रानी और 'आज़ाद', नई दिल्ली के शहीद गाँधी जी मिलते हैं.... यह सारी गरिमा हमारी संस्कृति की अमर निधि हो जाती है, निश्चय; पर देश के जीवन में उस संस्कृति की सच्ची विजय, स्वतंत्रता की सर्व सुखदायिनी शक्ति और अखिल जन-जीवन का उन्मुक्त आनंद, समाज की आत्मा का सच्चा निर्माण— नहीं बन सकती। वह संघर्ष बड़ा दर्दनाक है जिसकी हारें ही उसकी विजग हों। उसकी महानता लोक-भावना की सम्पत्ति है; इसलिए नहीं कि ऐसे संघर्ष में ही विजय की प्राप्ति है, बल्कि इसलिए कि ऐसे संघर्ष से भी उस लोक-शक्ति का धीरे-धीरे संचय होता है जो विजय प्राप्ति को निश्चित करती है।'
>
> *-(सुभद्रा कुमारी चौहान : एक अध्ययन/ कुछ और गद्य रचानाएँ)*

यहाँ संघर्ष (भले ही वह राष्ट्रीय हो) के हाथों एक कलाकार को खो देने की पीड़ा है,हालाँकि यह कथन विरोधाभासों से भरा हुआ है। ज़रूरी नहीं है कि इस विश्लेषण और राष्ट्र नायकों के कार्य और परिणतियों के संबंध में शमशेर के मूल्यांकन से हम सहमत हों— यहाँ तक कि उनके विशेषणों— जैसे 'नई दिल्ली के शहीद गाँधीजी'— को उचित क़रार दें, परंतु यह कथन सोच की एक मौलिक ज़मीन देता है और कला की महत्ता स्थापित करता है। इसमें शक नहीं कि कहीं-कहीं विचित्रताओं और आत्मगत रुचियों के बाद भी शमशेर के आलोचनात्मक लेखों में आलोड़ित करने की जो क्षमता है, आयाम का जो विस्तार है, निर्भीक और गंभीर सम्पृक्ति है, उससे पाठक को एक साथ अनेक निधियाँ अनायास मिल जाती हैं।

शमशेर के गद्य को गद्य की गति में, कई बार नहीं पढ़ा जा सकता, उसे आस्वाद लेते हुए थम कर पढ़ना होता है— न केवल उसमें निहित कविता के आस्वादन के लिए, बल्कि उन संकेतों और सूत्रों के लिए भी जो वे अपने लेखों-निबंधों में देते हैं। निराला की एक कविता की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं :

> 'स्मृति का दाग़ जब मिट जायेगा यानी उसकी कचोट, तो वह एक राग, गहरी भावना या एक मूल्यवान अनुभूति का रूप ले लेगी।
> और फिर वह राग क्या होगा, एक सपना ही तो होगा। धीरे-धीरे वह सपना, जो हम गोया नींद में, रात में देखते हैं, ख़त्म हो जाएगा। सुबह होगी, और सुबह की उस नयी रोशनी व ज्ञान को ही हम तुम्हारा प्रेम-अंचल कहेंगे। *(कुछ और गद्य रचनाएँ, पृ. 78)*

कुछ देशी-विदेशी कवियों को लेकर जिनके प्रति शमशेर 'कुछ काफी कम दर्जे पर' आकृष्ट हैं, कहते हैं:

> ....'मगर फिर लगता है कि जैसे काग़ज़ के फूल न होकर भी सच्चे फूल न हों। इनमें शायद वह सब कुछ है जिसके विरुद्ध मेरा स्वस्थ मन विद्रोह करता है, पर जिन्हें बड़े आश्चर्य से भी देखता है— शायद इसलिए कि इनमें जीवन के राग-शोक, आत्मा की हाय, दैन्य पराजय, भ्रम, कुहा, क्रूरता आदि उधार कर रख दिए गए हों।'
>
> -*(कला और साहित्य में प्रयोगवाद/ कुछ और गद्य रचनाएँ)*

इसमें संदेह नहीं कि शमशेर जैसा निबंधात्मक गद्य हिन्दी में किसी अन्य कवि ने नहीं लिखा और गद्यकार ने तो नहीं ही। ऐसा गद्य जिसका संबंध व्याकरण या गद्य के व्यवस्थित रूप से नहीं है, उल्टे जहाँ यह रूप नहीं है, वहीं शमशेर का अपना गद्य है, जो दूसरों से अलग पहचाना जा सकता है। उसकी धड़कन, रवानी, उर्दू का लहज़ा जिसमें हिन्दी की बोलचाल का ढंग और भाषा के साथ ज़रूरत पड़ने पर वे अंग्रेज़ी, संस्कृत आदि का प्रयोग भी करते हैं— कुल मिलाकर

जन-भाषा और विचार-भाषा का खुला, बतियाता रूप— शमशेर की विशेषता है। इसमें शामिल है उनकी काव्य-भाषा जिसके द्वारा कल्पना, आवेग, संवेदना, चित्रकारी, लय, राग, ख़ुशबू, चुप्पी, गुनगुनाहट इतनी सुन्दरता से उनके गद्य में शामिल होते हैं कि लगता है वे न सिर्फ़ पाठकों में दिलचस्पी ले रहे हैं, बल्कि उन्हें साहित्य के आंतरिक रूप में दिलचस्पी लेने के लिए पुकार रहे हैं, उन्हें संस्कारित करना चाह रहे हैं। मानो पाठक से वे कहते हैं कि 'आओ, ज़रा गुफ़्त-गू कर लें' नतीजा यह होता है कि वे चाहे हल्के-फुल्के मूड में बात करें, विचार जैसे गंभीर हो जाएँ या डाँट ही क्यों न लगाएँ; पाठक को अपने से लगते हैं। आंतरिक सच्चाई, आत्मीयता और अभिव्यक्ति की निष्ठा के कारण शमशेर से असहमत होना मुश्किल होता है। इतना ही नहीं, पाठक या रचनाकार उनसे डाँट भी इस तरह खाता है जैसे ख़ुद अपने में से गुज़र रहा हो। 'एक आधुनिक विदेशी विद्वान का मौलिक काव्य संग्रह' पर लिखते हुए वे कहते हैं:

'अभी जब तक हिन्दी का स्वरूप स्थिर नहीं होता और आज तो गद्य और पद्य दोनों में लापरवाही काफ़ी बढ़ गई है— तब तक, आप चाहें तो कह सकते हैं कि हिन्दी में लिखना सबसे आसान है। क्योंकि आम तौर पर कोई रोकने-टोकने वाला नहीं रह गया है। छंदोबद्ध रचनाएँ छंद की दृष्टि से प्राय: ग़लत ही होती हैं'.....

'कवि कर्म : प्रतिभा और अभिव्यक्ति' में भी वे इसी मुद्रा में कहते हैं :

'भाषा की अवहेलना किसी भी रचनाकार को सहज ही साहित्य के क्षेत्र से बाहर फेंक देती है और शिल्प की अवहेलना कला के क्षेत्र से। अब तक शिल्प और भाषा के क्षेत्र में जो कुछ प्राप्त हो चुका है उससे अज्ञान अक्षम्य है।'

'एक अच्छे कवि के लिए यह ज़रूरी है कि वह अपने देश की और भाषा की काव्य-परंपरा से अच्छी तरह परिचित हो और इस परंपरा में आने वाले श्रेष्ठ कवियों का उसने बार-बार प्रवचन और अध्ययन किया हो।'

-*(कुछ और गद्य रचनाएँ)*

नए रचनाकारों और कवियों के लिए ही नहीं हैं ऐसे वचन, ये शमशेर के रचना-आदर्श को भी प्रकट करते हैं।

शमशेर के निबंध बहुआयामी हैं। वे काव्य-सिद्धांतों, कवियों-रचनाकारों, समय,विचारधारा, लेखकीय व्यक्तित्व, इतिहास, भारतीय और विदेशी काव्य-परम्परा, विश्व के संदर्भ में हिन्दी साहित्य जैसे विषयों पर मौलिक ढंग से विचार करते हैं और इनके जरिए आत्मान्वेषण भी करते जाते हैं। ये निबंध शमशेर के अध्ययन,

आकांक्षा, मूल्य, चेतना, सोच और अंतर्द्वन्द्वों को समझने का एक ज़रूरी माध्यम हैं। इसी संदर्भ में काव्य-संग्रहों में लिखी उनकी भूमिकाएँ भी अति महत्त्व की हैं क्योंकि वे औपचारिक नहीं, आत्माभिव्यक्ति, और आत्म-स्वीकार के साथ साहित्य के अनेक मूलभूत प्रश्नों से जूझती हैं।

कहानी-स्केच

'प्लाट का मोर्चा' शमशेर की कहानी और स्केच-संग्रह है। बाद में यह सामग्री भी 'कुछ गद्य रचनाएँ' में शामिल कर ली गई।

कहानियों में *'प्लाट का मोर्चा'* नामक कहानी शमशेर की सर्वश्रेष्ठ कहानी है (काश, शमशेर ऐसी और कहानियाँ लिख पाते!) यों यह कहानी लेखक के द्वारा कहानी के प्लाट की खोज करने से प्रारंभ होती है। इसकी परिणति जिस 'प्लाट' में होती है वह निश्चय ही विशिष्ट है। विदेशी पीठिका पर यह युद्ध के बीच उभरी मानवीय संवेदना और विश्वास की छोटी-सी लेकिन हृदय हिला देने वाली कहानी है। लुइसा और सैनिक पुराने साथी रहे हैं, परन्तु अब वे परस्पर युद्धरत देशों के युद्ध कर्मी हैं— अर्थात् एक दूसरे के शत्रु। शत्रु की गुप्तचर लुइसा फ़िलहाल 'सैनिक' के देश में फँसी है। उसे यथाशीघ्र वहाँ से निकलना है। परंतु उसके साथ उसका बच्चा है। इसे वह बहुत विश्वास के साथ पुराने साथी सैनिक (जो अब उसका शत्रु है) को सौंप जाती है, ताकि वह उसकी रक्षा कर सके। सैनिक भी विश्वास की रक्षा करता है और बच्चे को एक अस्पताल में भर्ती कर देता है। फिर एक दिन सैनिक को एक साथ दो चिट्ठियाँ मिलती हैं। एक अस्पताल से आई है जिसमें बचाने की लाख कोशिश करने पर भी बीमारी से बच्चे की मृत्यु की सूचना है। दूसरा पत्र लुइसा का है जिसमें उसने सैनिक को अपने बच्चे की रक्षा करने के लिए धन्यवाद दिया है और आभार प्रकट किया है। कहानी का यह समापन सैनिक के हृदय की पीड़ा का अहसास कराता है। परंतु यह कहानी वास्तव में अपार विश्वास के साथ दो शत्रु देशों के युद्ध के बीच, एक बच्चे की रक्षा को मानवता की रक्षा जितनी अहम बना देती है। बच्चे की मृत्यु का ट्रेजिक संकेत देती हुई यह कहानी एक भयानक ख़बर भी देती है। कहानी में युद्ध का परिवेश, युद्ध की क्रूरता का एक गीत, छोटे-छोटे त्वरित संवादों में युद्ध की गतियाँ; चिंताएँ, दहशत आदि बहुत ही मार्मिक और सांकेतिक ढंग से प्रकट हुए हैं। छोटे-से कलेवर की यह कहानी शमशेर की कथा-क्षमता का एकमात्र प्रमाण है। क्योंकि फिर उन्होंने ऐसी गहरी, मार्मिक और प्रभावशाली कहानी नहीं लिखी।

'तिराहा' कहानी एक व्यस्त, पारंपरिक तिराहे के बीच की दुनिया में घटती घटनाएँ, स्थितियाँ, चित्र, लोगों की मानसिकता, वर्ग चरित्र, शोषण, भय, गुण्डागर्दी, विद्रूप आदि को व्यक्त करती छोटी-छोटी शब्द रेखाओं में चित्रित हैं। यह लोक-चरित्र और वातावरण के चित्रण की अच्छी-सी कहानी है और शमशेर के सामाजिक सोच को व्यक्त करती है।

तीसरी कहानी 'द क्रीसेन्ट लॉज' भी एक याद रहने वाली कहानी है, जिसमें अध्यापक के माध्यम से क्रांति-कथा घटित होने का संदर्भ है। इस कहानी में स्वर-ध्वनियाँ, कविता के अंतराल, संक्षिप्तता, सांकेतिकता में, उत्सर्ग, जीवट और भय के मार्मिक चिह्न प्रकट हुए हैं। लेकिन शेष 'कहानियाँ' दरअसल कहानियाँ नहीं हैं। इनमें हल्की या गहरी मन:स्थितियाँ, दैनिक घटना-क्रम, प्रकृति के बीच होने के गहरे अनुभव आदि कहीं-कहीं गद्य-गीत का स्वाद देते हैं। लगता है इन कहानीनुमा रेखांकनों में शमशेर गद्य-भाषा और कथा-विन्यास का रियाज़ कर रहे हैं, अपने विभिन्न मूड्स को तोल रहे हैं— परिवेश के बीच। कहीं-कहीं वे वर्तमान विद्रूप के बीच मानवीय अस्तित्व के संकट और मानवीय विकास की चिंता से जूझ रहे से प्रतीत होते हैं। कहते हैं :

> 'बहुत गंभीरतापूर्वक सोचता हूँ— मनुष्य क्या जानवर से ऊपर उठ सका है? सचमुच क्या ऊपर उठ सका है? उसका संचित ज्ञान-गांभीर्य किसके पास, कितनों के पास, कितना संचित है? किताबें क्या मनुष्य का हृदय हैं? अख़बार क्या एक गर्म बढ़िया चाय के प्याले से अधिक मूल्यवान है? सचमुच वह जीवन में कितना ज्ञान और सौन्दर्य और संबल भरता है। जीना ही एक हो उठी है समस्या! मनुष्य का जीना गंभीर विचार का विषय है। दर्शन, विज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र, युद्ध और न्याय और अन्याय इसके दीन उपचार हैं : *फिर भी मनुष्य नहीं जा (जी) पाता।' (कुछ गद्य रचनाएँ)*

यह दरसल कहानी नहीं निबंध या विचार का हिस्सा लगता है। यह कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि शमशेर से 'कहानी' विधा सधी नहीं। *'प्लाट का मोर्चा'* की उक्त तीन कहानियों को छोड़कर अन्य कहानियाँ वास्तव में यात्रा-*संदर्भ, डायरी, गद्यगीत, स्कैच आदि लगते हैं। शायद कहानी की लंबी बुनावट* का धैर्य उनमें नहीं था। या जीवन जो उनके पास फ़्लैशं में आता था, वह उन्हें बुनने से ज़्यादा गुनने की ओर ले जाता था या फिर चित्र, कविता, भाषा आदि उन्हें अपने में ही लीन कर लेते थे। जो हो, लेकिन यह है।

स्केच

चित्रकला तो शमशेर की प्रिय विधा रही ही है और जैसा हम देख चुके हैं कि यह उनकी हर विधा में शामिल है। इसलिए निश्चय ही जहाँ शमशेर शब्दों

में 'स्कैच' लिखते हैं तो उनका चित्रकार वहाँ स्वच्छंद रूप से आसन जमाने का अधिकारी हो जाता है। 'रेखाचित्र' में शब्दचित्र के साथ कहानी का स्वाभाविक मेल है, इसलिए आमतौर पर चित्रों की प्रधानता होते हुए भी रेखाचित्रों में कथा-तत्त्व होता है। यह हम निराला, महादेवी आदि के रेखाचित्रों में भी देख सकते हैं। शमशेर के रेखाचित्रों में भी कहानी के सूत्र चलते रहते हैं। जैसे 'मालिश : जाड़ों की एक सुबह' में भाभी, मुन्नी आदि पात्र आते हैं और मालिश की प्रक्रिया को एक कथानक में बदल देते हैं। इसी तरह 'कुल्हाड़ियाँ' , 'रात पानी बड़ा बरसा' आदि में। परंतु आवश्यक नहीं है कि सब जगह पात्र ही हों, स्वयं वस्तुएँ ही पात्र हो जाती हैं, सारा परिवेश ही कथात्मक ढंग का माहौल बनाता है, जैसे 'कठौती', 'पेड़' आदि में। इन रेखाचित्रों की एक अन्य स्वाभाविक विशेषता है काव्यात्मकता, वह जब शमशेर की सभी विधाओं में आती है तो यहाँ तो उसे होना ही है।

शमशेर के रेखाचित्र आंतरिक अनुभव और अभिव्यक्ति-कुशलता के साथ सूक्ष्म निरीक्षण की दृष्टि से बहुत अच्छे हैं। इनमें चित्रात्मकता तो है ही, परंतु विचार, भाव, अनुभूति आदि भी मार्मिकता से उभरी है। जाड़ों की सुबह में मालिश का यह अनुभव वास्तविकता को कविता और चित्रभाषा के द्वारा रोचक अनुभव में बदल देता है :

> 'कुछ मत सोचो, शरीर को अपने आप बढ़ने दो।— कानों ने दिमाग़ की ख़बर ली। कानों ने कमर को सीधा उठाया। आँखों में तरावट, ओठों में गंभीरता आई। मुट्ठी में दृढ़ता, मुद्रा में निश्चयता, बुद्धि में नव चेतना का जागरण।' -*(मालिश : जाड़ों की सुबह में/ कुछ गद्य रचनाएँ)*

शमशेर प्रकृति के प्रति बेहद अनुरक्त हैं। शाम, सुबह; बादल, वर्षा उन्हें बहुत प्रिय हैं। खिड़की से सुबह, बादल, पहाड़ी धूप का मिला जुला यह दृश्य कितना चित्रमय और काव्यमय है जहाँ प्रकृति में जीवन का अनुभव वैसा ही है जैसा उनकी कविताओं में है :

> 'नहीं तो! कहाँ? धूप फूलों के सपने की तरह उन पर खेलती हुई उतर गई है, और अब वे जाग रहे हैं, ऐसा मालूम होता है। बादलों ने अपनी रुकी हुई साँस बाहर निकाल दी है, और एक हल्की चहल-पहल-सी इन पहाड़ियों के इर्द-गिर्द और इन बादलों में मालूम होती है। इस छोटी-सी दुनिया ने अपनी छोटी-सी पलकें खोल दी हैं; जो अब मेरा और मेरी खिड़की का लेखा ले रही है। जागकर उन्होंने मुझे पहचान लिया है कि मैं वही हूँ जिसको उन्होंने आज अपने आमने-सामने बैठा रखा है। कुदरत का सीना खुला हुआ है'... (और इस सारे स्केच का कथ्य में किस क़दर जीवन-संपृक्त हैं!) ...'कुदरत का यह ढंग क्या ज़िंदगी साबित नहीं होता! एक चलती ज़िंदगी का खेल?' - *(स्वर/ कुछ गद्य रचनाएँ)*

इस रेखाचित्र में दृश्य, ध्वनि, स्वभाव आदि का अद्‌भुत तालमेल जैसे आँखों में चित्र सजीव हो उठता है। परंतु कुछ रेखाचित्र उनके सामाजिक सरोकारों को प्रकट करते हैं। उदाहरण के लिए 'कुल्हाड़ियाँ' लें, जहाँ बाह्य चित्रण के माध्यम से हृदय की निर्मलता और कर्म-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हुई है :

> 'उस लड़की का कार्य भी पत्थरों की आड़ में जारी है। और नीली धोती वाली लड़की ने अबकी एक मोटी डाल साफ़ करके नीचे के ढेर में फेंकी। उसमें यथेष्ट स्वाभिमान है। ये लोग बातचीत भी ऐसे ही, करते जा रहे हैं। लड़का अभी ज़ोर से हँस पड़ा था, कुछ देख कर। औरतों की बातचीत में हल्की उलहाना भरी खनखनाहट है, जो उनके सहसा हँसने पर विलीन हो जाती है, मगर फिर भी अच्छी लगती है।' -*(कुछ और गद्य रचनाएँ)*

वास्तव में ऐसी ही जगहें होती हैं जहाँ केन्वास के रेखांकन से शब्द-चित्र की भूमिका अधिक समर्थ प्रतीत होती है। वह चित्र को गति, अनुभूति और सोच देता है। शमशेर में यह अक्सर होता है; क्योंकि उनके संवेदनों में कई कला-रूप एकत्र हैं। 'रंग और वक्त' जैसे रेखाचित्र विचारशीलता और द्वन्द्वात्मक अनुभूति को उजागर करते हैं। वहाँ तो कल्पनाशीलता देखते ही बनती है जहाँ लेखक कोमलता के उलट, युद्ध के आतंकवादी धमाकों को भी सुनता है जो इस सुन्दर दुनिया को भयाक्रांत बनाते हैं, और तभी वे उस विद्रोही स्वर को भी जो युद्ध के विरोध में उठते हैं। कोमल और परुष का यह द्वन्द्व कला की निरंतरता है— यानी जीवन की तरह कला भी संघर्ष की निरंतरता है। इस गहरे अर्थ को शमशेर उसी तरह की गहरी सांकेतिक भाषा में व्यक्त करते हैं जो रेखाचित्र का एक बहुत बड़ा दायरा, यानी उसका कला होना चरितार्थ करते हैं :

> 'जिन स्वरों की कोमलता पर हम अभी अभी ऊपर बहस कर रहे थे, उन्हीं में से एकाध को या दो-तीन को हठात् बंद करने के लिए, कुछ दूसरे क़िस्म की, बारूद के धड़ाके की भारी आवाज़ें ठ्ठाँय-ठ्ठाँय इस समय, इस शिविर से सुनी जा सकती हैं। मगर ये आवाज़ें भला कहाँ बंद होंगी? और तीव्र हो उठेंगी ये आवाज़ें, और उनका सामूहिक विरोध। मगर यह इन स्वरों का रूप कभी भी मरेगा क्या? जिस रोज़ हम इस रूप की कला को पूर्णत: समझ जाएँगे, यह कला मर जायेगी।'
>
> -*(रंग और वक़्त/ कुछ गद्य रचनाएँ)*

शमशेर ने थोड़े ही रेखाचित्र लिखे हैं। लेकिन इनमें जीवन के इतने रूप, अनुभव, विचार, और कल्पनाएँ सँजोइ हुई हैं जिन्हें बहुत बड़े विस्तार में भी शायद ही व्यक्त करना संभव हो। यही सूक्ष्म में विराट को व्यंजित करने वाली शक्ति है।

डायरी

शमशेर की डायरी दैनंदिनी नहीं है। इतने लंबे जीवन में उन्होंने कभी-कभार डायरी लिखी है— वह भी दैनिक चर्या के रूप में नहीं; गहराई से छू जाने वाली किसी चीज़ या अनुभव को तत्काल रेखांकित करने की व्यग्रता से जब-तब ही। उसका स्वरूप और स्वभाव भी उनके कवि जैसा मुक्त है। विधा और शिल्प के बंधन से परे मुक्त भाव से लिखी डायरी उनके कवित्व का प्रतिबिम्ब लगती है। कहीं वह एक-दो पंक्तियों में है तो कहीं पृष्ठों के विस्तार में; कहीं नितांत आत्मगत सूनापन, पीड़ा, आर्थिक संघर्ष, व्यक्तिगत प्रभाव आदि हैं, तो कहीं जीवन-सूत्र, सरोकार, प्रसंग, परिवेश, सामाजिक चिंता, कृतज्ञता, सोच आदि हैं। कहीं वे अपने आपसे सवाल करते हैं तो कहीं समय और प्रवृत्ति पर विचार करते हैं। कहीं गहरे आत्मताप का संकेत देती ऐसी पंक्तियाँ हैं— 'यों ही दिन गुज़र रहे हैं और मैं जहाँ का तहाँ हूँ।' *(कुछ गद्य रचनाएँ, पृ. 271)* तो, कहीं किसी की आग और संघर्ष को रेखांकित करते हुए, सराहते हुए वे मात्र इतना-सा स्केच खींचते हैं— 'एक लड़का जिसका एक हाथ लुंज हो गया है, आया। उसके अंदर 'बड़ी आग'। एक रेवेल्यूशनरी हस्ती है। पाँव के अँगूठे से लिखना सीखा।' (पृ. 296) ये कुछ वाक्य बड़े-बड़े वर्णनों भी ज़्यादा प्रभावकारी और व्यंजक हैं। मानवीय संघर्ष की जीवट के स्फुल्लिंग छोड़ते हुए।

यह अपने आप पर व्यंग्य करता हुआ आत्मालाप देखें जो झुँझलाहट से भरा है, लेकिन शमशेर के व्यक्तित्व का उद्घाटन करता है जो डायरी का एक महत्त्वपूर्ण अवदान होता है। यहाँ वे अपने को उन चीज़ों के लिए क्षमा नहीं करते, जिनके कारण वे अन्यथा रूप से कवि दिखें। या उन कारणों से सहानुभूति पाएँ जिनका संबंध उनकी प्रतिभा और योग्यता से नहीं है—

> 'नल पर मुझे हमेशा किसी के लिए कुछ न कुछ छोड़ आना!.... क्योंकि अपनी ज़रूरी चीज़ें.... कविताओं की पाण्डुलिपि और डायरियाँ— गुलूबंद— पहनने के कपड़े, ऐनक का डिब्बा, बिस्तर बाँधने और सुखाने के लिए कपड़ा टाँगने की रस्सी, चम्मच, साबुन... क्या हो गया है मुझे, आख़िर? क्या चाहता हूँ मैं— अपने को ज़लील करना? मुश्किल में ही अपने आपको देखना, क्या मैं ऐसे पात्र का अभिनय करना चाहता हूँ जो 'निरीह' लगे, 'भूलनेवाला', 'भोला', 'पवित्र'....? (कुछ गद्य रचनाएँ, पृङ 302)

डायरी के ऐसे अनेक संदर्भों से प्रकट होता है कि शमशेर में संघर्ष पूर्ण कवित्व की ऐसी हठ है कि वे कहीं भी अपनी निरीहता नहीं दिखाना चाहते हैं। वे जीवन-कारणों से कोई सहानुभूति पाना नहीं चाहते। (ऊपर के लुंज-पुंज लड़के

की सराहना भी इस अर्थ में देखें।) इसीलिए उन्होंने अपने आर्थिक संघर्षों या ज़ीवन की विषम स्थितियों को कभी प्रभामंडित नहीं किया। यहाँ तक कि डायरी लेखन के बिलकुल निजी एकांत में भी इन बातों के स्मरण को प्राय: तरजीह नहीं दी, वे केवल सांकेतिक रूप में यहाँ वहाँ दिखते हैं, और बिलकुल इस तरह जैसे उनकी कोई अहमियत न हो :

> 'शाम की अँगीठी बड़े मजे से और जल्द सुलग गई, बग़ैर नमक वगैरह डाले, पचमेल 'दलिया' की खिचड़ी बनाई।.... न रहा गया, शाम को बचे खुचे पैसों से आधा सेर चीनी और एक आने का दूध ले ही आया। चाय बनायी और कई प्याले पिए। तबीयत को बड़ी राहत मिली।'
>
> *(कुछ गद्य रचनाएँ, पृ. 276)*

यह 5.6.55 की डायरी है, हिन्दी के एक बड़े कवि की! ख़ैर, यहाँ भी अँगीठी मज़े से सुलगने और कई प्याला पीने का सुख मानो प्रमुख हो गया है और ग़रीबी के प्रति कोई आत्म दया का भाव नहीं, बल्कि जैसे यह सहज-सुखद दिनचर्या और स्थिति है। डायरी से जीवन के इस पक्ष को अक्सर अपेक्षित कर देना शमशेर की भीतरी सच्चाई को प्रकट करता है कि वे केवल बाहरी प्रदर्शन न करने के लिए ही अपने दुर्दिनों के बखान से नहीं बचते थे, बल्कि अपने भीतर भी दुर्दिनों को बसने नहीं देते थे, और बार-बार झटकते रहते थे।

डायरी तो निजी होती भी है, परंतु शमशेर की निजता ही ऐसी थी, जो व्यक्तिगत नहीं थी— तभी वह कविता भी बनी। निजी क्षणों में वे दुनिया जहान की बात करते हैं। किसी विदेशी पत्रिका में पढ़े लेख का ज़िक्र करते हुए वे अपने साहित्य से उसकी तुलना करने लगते हैं, कहीं पुस्तकालय में बिताए गए समय का जीविन के ब्योरा देते हैं। अपने साहित्य को लेकर हम उन्हें डायरी में कई बार चिंतित देख सकते हैं, यहाँ तक कि अपनी भाषा के साहित्यिकों की उपेक्षा पर भी वे व्यक्ति के स्तर पर क्षोभ प्रकट करते हैं। डायरी में एक प्रसंग इलाचंद जोशी का है। जोशी जी हिन्दी के अग्रणी मनोवैज्ञानिक कथाकार थे और फ्रायड से प्रभावित थे। ज़ाहिर है कि प्रगतिशील खेमे के लेखक उनके प्रति उपेक्षा भाव रखते थे— इसका अर्थ ही था अधिकांश साहित्य-समाज से उपेक्षित होना और अचर्चित रहने के कारण पाठकों के बीच भी उस स्तर का आदर न पाना जिसके वे अधिकारी थे। शमशेर इस पर गहरा दुख प्रकट करते हैं। सृजन चाहे जिस दिशा का हो यदि वह महत्त्वपूर्ण है तो उसका सम्मान होना चाहिए और उसके सर्जक का भी। इस नितांत उदार साहित्यिक भावना के कारण ही शमशेर संकीर्ण मतवादी लेखकों से अलग होते हैं। वे लिखते हैं :

> 'अफ़सोस की बात है कि हम अपने साहित्यिकों से प्यार करना नहीं जानते, उन्हें समझना नहीं जानते, या चाहते। इधर-उधर से जोड़-तोड़ लगा कर चलताऊ

माल बाज़ार में ढेर का ढेर सस्ते दामों में बेचते हैं।' फिर वे अपने आप निश्चय करते हैं— 'मैं इनसे सीखूँगा, इनसे मदद हासिल करूँगा। '

(पृ. 295)

शमशेर कविता में भी साहित्य की गुटबाज़ी और जोड़-तोड़ को धिक्कारते हैं :

'क्या यही होगा जवाब एक कलाकार के पास
रक्खा जाएगा क़लम जूती औ पैज़ार के पास।' *(कुछ कविताएं, पृ. 24)*

'कुछ और कविताएँ' में यह तीखी कविता संकलित है 'सुन के ऐसी ही सी एक बात'। साहित्यिकों के बीच हार्दिकता और सौजन्य हो इसकी कामना वे व्यक्त और अव्यक्त (निजी) क्षणों में करते रहे। तो, उनकी डायरी के ऐसे अक्स उनके काव्य की निजी स्तर पर पुष्टि करते हैं। इलाचंद्र जोशी पर उन्होंने कोई लेख नहीं लिखा, न बाहरी वकालत की, लेकिन उनका भीतर से यह महसूस करना— सिर्फ़ उनके संदर्भ में ही नहीं, बल्कि ऐसी प्रवृत्तियों के संदर्भ में एक सार्वजनिक सोच है। (शायद कहीं अपनी उपेक्षा से भी यहाँ वे आहत हैं।)

अपने निजीपन को भी शमशेर ने विमर्श की ऐसी आत्मीयता दी है जो पाठक को भी लाभान्वित कर सकती है। यह निजी का सार्वजनीन बन जाना है। डायरी का यह गुण उसे कला बना देता है। डॉ. ताराचंद का भाषण सुन कर शमशेर अपने लिए जो दर्ज करते हैं वह उनकी व्यक्तिगत ही नहीं सामाजिक कृतज्ञता है और (जो) दूसरों के मन में भी ज्ञान के प्रति सम्मान भाव जगाती है :

'एक लेक्चर में जितना कुछ डॉ. ताराचंद ने हिन्दुस्तान की तहजीब की बुनियाद और उसकी रूपरेखा, उसके आदर्श और उद्देश्य और उसके इतिहास के सृजन या विघटन वाले तत्त्वों के बारे में हमें बताया है, वह पूरे ग्रंथ का खुलासा था। चिंतन में गहराई और तथ्यों की पकड़ में मज़बूती थी, और वह बड़ी ठोस ज़मीन पर खड़े थे। इतिहास का एक सजीव रूप मुझ पर जादू-सा डाल रहा था।' (पृ. 334)

डायरी में ऐसे पत्र भी हैं जो निजी होकर रह गए हैं, उन्हें संबोधित के पास भेजा ही नहीं गया और अगर भेजा जाता तो शायद उनका वह आंतरिक अभिप्राय प्रकट नहीं हो पाता जो अनभेजे हुआ है। एक पत्र *'लहर'* की संपादिका मनमोहिनी को लिखा गया था। जो पति 'प्रकाश जैन' के निधन के बाद अकेली *'लहर'* चला रही थीं। इस पत्र में सांसारिक संबंधों पर अजब विक्षुब्ध और किसी हद तक दार्शनिक-सी टिप्पणी है— इसमें शमशेर का अकेलापन और शायद उससे लड़ने की मानसिकता का अद्‌भुत प्रतिबिम्ब है। परंतु एक प्रिय साहित्यिक पत्रिका के प्रति शमशेर की ये पंक्तियाँ मार्मिक भी हैं और किसी भी सम्पादक को आत्मीय स्तर पर आश्वस्त करने वाली भी :

'लहर' मेरी निजी पत्रिका है। इसलिए आज चार-पाँच साल बाद तुम्हें पहली

बार लिख रहा हूँ। हमेशा मैं अपने आप से कहता हूँ : इसके आठ सफ़े बिलकुल मेरे अपने हैं, इसमें जो चाहूँ मैं लिखूँ : यानी एक केन्वेस है जो इतनी मुद्दत से सूना, कोरा, सादा, एकटक सामने, सपाट शीशे की तरह, जो चमक भी नहीं रहा है, रखा है। वह मुझे देख रहा है, मैं उसे '

(कुछ गद्य रचनाएँ, पृ. 337)

डायरी में सौन्दर्य के क्षणों के भी शॉट्स हैं, जो कवि की आँख का एकांत सुख भी हो सकता है :

'तुम्हारा नाम क्या होगा? जो सादगी की परी, जो माधुर्य का मौन गांभीर्य! मेरे हृदय का मकान तुम्हें पसंद आया होगा क्या भला रहने के लिए... ए काश! ए काश!' (पृ. 297)

अन्यत्र सौन्दर्य को बाज़ार में बिकते देख कर जो क्षोभ है, उसमें वह उस पूरी समाज व्यवस्था पर परोक्ष चोट करता है जिसने 'स्त्री' को पूरी की पूरी वस्तु में बदल जाने पर बाध्य कर दिया है :

'वह ख़ुद एक पूरी कम्पलीट दुकान है। ख़ुद ही काउंटर है और सेल्स गर्ल के हाथों काउंटर पर लाकर रखी हुई बिक्री की चीज़। वह एक पूरी ज़िंदा दुकान है।' *(कुछ गद्य रचनाएँ, पृ. 283)*

यह कैसी ख़ामोश चीख़ है! अन्यत्र समय के विद्रूप पर एक लेखनुमा हिस्सा (पृ. 299-301) भी डायरी में है जिसमें व्यंग्य ही व्यंग्य भरा हुआ है।

इस तरह शमशेर की डायरी में जीवनानुभव के अनेक शेड्स, बिम्ब, संकेत हैं जिसमें बाह्य जगत गूँथा हुआ है।

शमशेर की डायरी का बड़ा हिस्सा प्रकृति-चित्रों और अनुभूतियों को समर्पित है। लगता है प्रकृति ही उनकी अकेलेपन की सहचरी थी। बारिश, बादल, पर्वत शृंखलाएँ, सुबह, शाम के ये आत्मानुभूति में रँगे चित्र कविता का-सा आस्वाद देते हैं। और कहीं कहीं तो स्वयं कविता या कविता के नोट्स जैसे लगते हैं। एक तारीख़ को केवल ये पंक्तियाँ लिखी गई हैं :

'नभ की सीपी जो रात्रि की कालिमा में पड़ी थी, धीरे-धीरे उषा की कोमल लहरों में घुलती और पसरती चली गई।' *(कुछ गद्य रचनाएँ)*

यह उनकी इतनी ही छोटी कविता 'सुबह' का पूर्व रूप है :

'जो कि सिकुड़ा हुआ बैठा था, वो पत्थर
सजग-सा होकर पसरने लगा
आप से आप।' *(कुछ कविताएँ, पृ. 44)*

शमशेर की कई रचनाओं के संकेत या नोट्स डायरी में मिल जाते हैं, जैसे कोई चित्रकार तुरंत किसी दृश्य को देख कर, उतावली से लैण्ड स्केप की आउट लाइन बना ले— रंग बेशक बाद में भरे :

'फिर जहाँ ले जाएँ ये मुद्राएँ मुझे
नग्न एक धनुष मैं
किंतु अभी टंकारहीन
स्थिर मात्र
स्थिर तम शेष। ...
नाच मुड़कर— दो चरण ठहर-ठहरकाँप
उँगलियों पर भार सँवार
— वीणा के भाव तिरते अस्थिर।' *(कुछ गद्य रचनाएँ, पृ. 289)*

कलाओं के प्रभाव का अंकन शमशेर की कई कविताओं में हुआ है। परंतु कविता, भावों के परिपक्व होने, उन्हें सम्पूर्णता देने का अवकाश चाहती है। ये पंक्तियाँ मात्र तात्कालिक प्रभावों की रूप-रेखा है। प्रकृति और जीवन की ऐसी अनेक प्रारंभिक रूप-रेखाएँ डायरी में बिखरी पड़ी हैं। यहाँ तक कि डायरी के पृष्ठों से कोई चित्र या अनुभूति ही नहीं, शमशेर ने सहसा उठे विचार तत्काल सुरक्षित कर लेने का काम लिया है, जैसे एक तिथि को वे 'शैली के संबंध में कुछ बातें अपने दिल में याद रखने के लिए' लिखते हैं और ऐसी ग्यारह बातों की सूची बनाते हैं, जिनका व्यवस्थित विवेचन निबंध का रूप ले सकता है।

डायरी में कहीं-कहीं यात्राओं के स्मरण या प्रभाव की तीव्रता अंकित है जैसे सारनाथ की यात्रा का प्रसंग। ये तमाम प्रसंग या अनुभव-क्षण वहाँ व्यवस्थित नहीं हैं, सांकेतिक हैं। लगता है कि भीतर जो एक गुनगुनाहट या आत्म-विमर्श चलता रहता था उसे वे अपने लिए दर्ज कर लेते थे। यहाँ भी शमशेरियत बरक़रार है— यानी न भाषा का ठसपन, न विस्तार— बस हल्की या तीव्र छुअन, रेखाएँ, गूँज, कंपन, स्फुरण। इन गुणों के कारण डायरी पाठक के लिए रचनाकार को जानने या उसके अंतरंग में उतरने का ही माध्यम नहीं रही, अपने आपको और संसार को देखने की भंगिमा या दृष्टि-बोध बन गई है— क्योंकि वह लेखक का निजी ब्योरा भर नहीं है, संसार को देखते कलाकार की आँख है और अपने को देखे जाने वाले संसार का अक्स भी।

यह डायरी महज़ पुस्तक के अड़सठ पृष्ठों में छितरी है— भारी-भरकम डायरियों की तुलना में बहुत छोटी, मगर सिर्फ़ देखने में— अनुभव के वैविध्य, जीवन-जगत की समझ, सौन्दर्य, संघर्ष और प्रेरणा की दृष्टि से नहीं। ये छोटे-छोटे दृश्य और अनुभव-बिम्ब बड़े दृश्यों और अनुभवों के द्वार खोलते हैं।

शमशेर के गद्य-साहित्य का कुल अक्स रघुवीर सहाय ने इन पंक्तियों में उतारा है। काफ़ी सही... काफ़ी....

'सुन्दर सुगठित गद्य, हृदय के हाथों लिखा
पढ़ते-पढ़ते चित्त यात्राएँ करने लगा।'

7

अन्तिम पाठ

नए बादल, वह कोना ख़ाली है देखो-देखो

जा उठा के पढ़ ले काग़ज़ जिस पे मेरा शेर है
देखना वह शेर है या दूसरा शमशेर है।

यह आत्म-स्तवन नहीं, शमशेर की रचना का सौ-फ़ी-सदी सच है। उनका सम्पूर्ण साहित्य आत्म-प्रतिरूप है— उनकी ख़ूबियों-ख़ामियों, विचार, अनुभव, कल्पना, सरोकार, विचलन, स्वीकार-अस्वीकार, विकास, बेचैनी, आकांक्षा, वैविध्य, उदारता— सब कुछ स्वच्छ दर्पण के आगे रखा हो जैसे। खरापन और शुद्धता।

सहना ही जीना है, दिखाना नहीं :

यह ठीक है कि शमशेर का जीवन पीड़ा की कथा है, लेकिन कभी इसे उन्होंने उभार कर नहीं दिखाया— न गद्य में, न पद्य में, न भाषण, बातचीत या व्यवहार में। यदि वे अपने प्रति व्यवहार में निर्लिप्त और निमर्म थे, तो वह उनका प्रदर्शन नहीं था— स्वभाव था। 'डायरी' से अधिक सच कौन बोल सकता है। लेकिन हम वहाँ भी देख चुके हैं कि अभाव और अकेलेपन को चाय की चुस्कियों में घोल कर वे उसे कितनी तृप्ति बना लेते थे। जीवन भर दूसरे परिवारों के साथ रहकर कैसी आत्मीय सृष्टि रच लेते थे। यही सहने का न सहने जैसा अनुभव या गीता का 'अकर्म-कर्म' है। उनका सब कुछ कविता में शाम, सुबह, स्मृति, कल्पना, मौन, प्रेयसी, मित्र, माँ, कला, लोक आदि में तिरोहित होकर करुणा, प्रेम, सौन्दर्य का व्यापक रूप ले लेता है—जैसे उड़ते स्पूतनिक से छूटी लकीर धीरे-धीरे आकाश

में लय हो जाती है। यह सब इतना ख़ामोश और गहरा है जैसे कोई पानी में कूदे भी मगर न आवाज़ हो और न छींटे उड़ें। जिन्होंने शमशेर को निकट से देखा या उनके जीवन में भाग लिया है, वे तक अचंभित हैं यह देखकर कि रचना में (या कभी बोल कर भी) उन्होंने अपने बारे में वह लगभग नहीं कहा जिसे मर्मांतक पीड़ा में झेला है। अपने प्रति इतनी उदासीनता! छोटे भाई तेज बहादुर ने एक बार पूछ ही तो लिया— 'आपने कविता में अपने को बहुत कम व्यक्त किया?' क्यों? इस पर शमशेर का उत्तर जिगर मुरादाबादी का यह शेर था :

तस्वीर के दो रुख़ हैं, रुख़ है रुख़े जाना है
एक नक्श दिखाना है, एक नक्श छिपाना है॥

यह छिपाना छद्म नहीं है, क्योंकि इसके बदले में कुछ और दिखाने का अभिप्राय नहीं है, बल्कि यह अभिव्यंजना की अंतर्हित प्रक्रिया है जो अंतर्बाह्य स्वभाव में इस तरह ढली हुई कि स्वाभाविक हो जाए— अतिरिक्त न रहे। अज्ञेय पर लिखी शमशेर की कविता भले ही संबोधित अज्ञेय को हो, लेकिन प्रबोधित उससे शमशेर हुए हैं:

'जो नहीं है
... .
उसका ग़म क्या?
वह नहीं है।'

अर्थात् 'नहीं है' का अकृत्रिम स्वीकार— और आगे कहा गया है वह यह है कि जो प्राप्य है उसे स्वाभाविकता से लेना— बिना उसमें अभाव का अनुभव किए हुए। उसी को सहेजना-सँवारना— 'जो कि है।' यह भी वास्तविकता का निर्ग्रंथ स्वीकार है और उसी के माध्यम से जीवन में— और काव्य में भी— सब कुछ सिरजना, सँवारना है :

'जो है
उसे ही क्यों न सँजोना?
उसी के क्यों न होना?
—जो कि है।' *(कुछ कविताएँ पृ. 72)*

'जो है' और 'जो नहीं है'— दोनों का सहज स्वीकार, यथास्थिति का स्वीकार नहीं है, बल्कि अपने भाव या अभाव के प्रति अतिरिक्त मोहासक्ति, आत्म-व्यथा या आत्म दया से मुक्त होने की कोशिश है। अपने तईं यह 'स्वीकार' — अपनी सीमा से ऊपर उठा कर निजी अनुभवों को व्यापकता देता है। फ़र्ज़ कीजिए कि यदि शमशेर का व्यक्ति अपने अभावों से ही क्षुब्ध रहता, उसे ही अवचेतन और चेतन के संचालन की डोर थमा देता तो या तो वह उत्तर छायावादी कवियों की

तरह रोता और निराश होता रहता; या आत्महंता 'अ-कवियों' की तरह— कुंठा, घृणा, विद्रूप, विघटन की भेंट चढ़ जाता। बहुत से बहुत वह ज़ोर शोर से चीख़ता और कविता में नारे लगाता। तब, काव्य में क्या ऐसी उत्कट जिजीविषा; सौन्दर्य, प्रेम, मनुष्यता, सहिष्णुता और शांति की स्निग्धता और गहरी छवि देखी जा सकती थी?— और वह तन्मय-बारीक बुनावट भी जो भाषा और जीवन को भीतर के तारों से गूँथती है! अपने से ऊपर उठकर पाई गई निर्लिप्तता ही मनुष्य को शेष सृष्टि के साथ जोड़ती है। इसी को कबीर कहते हैं— 'आपा मेटे हरि मिले।'

'सहज स्वीकार' 'सहज-साधना' जैसा ही कठिन है। इसे पाने के लिए शमशेर ने कला-साधना को जीवन की यज्ञ-भूमि और जीवन को कला-साधना की आहुति बनाया है। दोनों समतुल्यता में साधे गए हैं— इस तरह कि सिक्के के दो पहलू हों... गोया।

कवि का गणित :

सत्य के अन्वेषण की प्रबल जिज्ञासा और उसे व्यक्त करने का साहस शमशेर में है। इसके लिए ज़रूरी स्वाधीनता-बोध भी उनमें है। इसी कारण बिना किसी बाहरी या भीतरी बाधा के उन्होंने जहाँ से, जो कुछ अच्छा और उपयोगी मिला, ग्रहण किया— वह जो उनके आत्मान्वेषण को दिशा दे, अर्थ दे— और उसके प्रति पूरी कृतज्ञता भी प्रकट की। उन्होंने इस बात की चिंता नहीं की कि वे जिससे ले रहे हैं— वह साहित्यिक जुमलों में प्रगतिशील है या प्रतिक्रियावादी; आज का है या अतीत का; देश का है या विदेश का। ऐसा कोई हिसाब-किताब बैठाना उनकी स्वाधीन प्रकृति के विरुद्ध था। सबसे बड़ी बात यह है कि उनके लिए सच्चा सर्जक हर तरह के लेबल से ऊपर था। डायरी में इलाचंद्र जोशी के बारे में उनके स्नेहपूर्ण उद्गारों का उल्लेख किया जा चुका है। शमशेर अकेले कवि हैं जिन्होंने विभिन्न भूमियों, शैलियों, देशों, युगों की रचनाओं और रचनाकारों पर लिखा, आभार व्यक्त किया और सर्जना की क़ीमत पर किसी प्रकार का समझौता नहीं किया। वे विचारों से प्रगतिशील थे, परंतु प्रगतिवादी-मार्क्सवादी विचारों को उन्होंने अपनी आंतरिक बाध्यता के कारण, अन्याय और शोषण के विरुद्ध जलती भीतरी आग के कारण अपनाया था, किसी शिविरबद्धता, पार्टीबद्धता के तहत नहीं— कर्मकाण्ड में वे विश्वास नहीं करते थे, और इसे छिपाते भी नहीं थे। अगर वे पक्षधर थे तो मनुष्य के; कविता में प्रजातंत्र के, इसका अर्थ है अपने रचना-विवेक और रचनाशीलता पर गहरी आस्था और निर्भय-मुक्त आत्मनिष्ठा। इसी कारण शमशेर बाहर से दिखने वाली युग-धाराओं को अपनी भीतरी बुनावट में गूँथते हुए, विविधतापूर्ण और युग में स्थित होकर भी युगों को लांघने वाली रचनाएँ दे सके।

कागद की लेखी नहीं आँखिन की देखी :

बद्धमूल धारणा के लोग या पूर्वग्रही— उनका अक्सर ग़लत मूल्यांकन करते हैं। कहीं वे उनकी प्रेम-सौन्दर्य-प्रकृति-वेदना वाली कविताओं को सामाजिक विचारों का विलोम बताते हैं तो कहीं शमशेर की मुख्यत: प्रारंभिक कविताओं या बाद में भी जब तब लिखी बहिर्मुखी, स्पष्ट सामाजिकता की कविताओं को मान्यता देते हुए, उनकी समग्रता और विकासशीलता को नज़रअंदाज़ कर जाते हैं। दूसरी ओर ऐसे मनीषी भी हैं जिन्होंने उन्हें कलावादी के रूप में प्रभामंडित करके 'कवियों का कवि' बना दिया है। इस प्रकार वे एक कवि के भीतर दो कवि की ग़लत अवधारणा करते हैं जबकि शमशेर का समूचा सृजन इकहरेपन से नहीं, बल्कि विवेक संगत ग्रहणशीलता के सहारे निरंतर विकसित हुआ है।

शमशेर को खंडित करने की बजाय हमें उनके काव्य-साहित्य से प्रश्न यह पूछना चाहिए कि पाठक पर उसका समग्र प्रभाव क्या पड़ता है? उससे मनुष्य के आंतरिक द्वेष का शमन होता है या उद्वेलन? वह भीतर के मनुष्य को संकीर्ण बनाता है या उदात्त? वह निम्न आवेगों की ओर ले जाता है या उनका परिष्कार करता है? वह सब प्रकार के अन्यायों के प्रति द्रोह जगाता है या उनका पोषण करता है? वह जीवन से प्रेम करना सिखाता है या उसके प्रति विराग या उससे पलायन के लिए प्रेरित करता है? और अंतत: यह कि उनकी सूक्षम-कला-चेतना और प्रयोगधर्मी सर्जना किसी प्रदर्शन की प्रवृत्ति से उपजी है या चीज़ों को सही सही अन्वेषित करने और व्यंजित करने के आंतरिक संघर्ष का प्रतिफलन है? शमशेर के साहित्य से ये सवाल पिछले पृष्ठों में भाँति-भाँति से पूछे गए हैं। हमने देखा है कि वह मानवीय संघर्ष, विवेक, आस्था, बोध, प्रेम और कलात्मक सौन्दर्य के प्रति उन्मुख करता है।

ख़ानदानी 'हकीम' थे वे

अन्वेषण के दौर में शमशेर 'कोशिश और ग़लती' (Trial & Crror) पद्धति से अपना अनवरत विकास करते रहे हैं, निरंतर आत्म-विश्लेषण से गुजरते रहे हैं। रुग्ण व्यक्तिवाद से उन्होंने इसी तरह पीछा छुड़ाया है था, जिसका संदर्भ पूर्व पृष्ठों में दिया गया। सच्ची प्रतिबद्धता और मुक्ति के बारे में उनके विचार काव्य-संग्रहों की भूमिकाओं में और अन्यत्र प्रकट हुए हैं। जीवन के सत्य की खोज का माध्यम उनके लिए मुख्य रूप से लौकिक अनुभव-प्रेक्षण, प्रकृति, कला और निजी रागात्मक संबंध रहे हैं। इन्हीं के माध्यम से उन्हें बड़े फ़लक मिले हैं या बड़े फ़लक इन्हीं में से प्रकट हुए हैं। यहाँ तक कि व्यक्तियों पर लिखी कविताएँ भी व्यक्ति पर न रुक कर मानवीय अर्थ बन जाती हैं। 'कामरेड रुद्रदत्त भारद्वाज', 'माई'

जैसी कविताएँ इसका उदाहरण हैं। जैसे औषधि जाती गले से, पेट में है लेकिन उन-उन व्याधियों का स्पर्श करती है— जिन-जिन के लिए है। यह स्पर्श दिखाई नहीं देता, प्रतिफलित होता है। शमशेर की संवेदन स्पर्शी कला का यही स्वरूप और स्वभाव है।

अभिव्यंजना की कला पर उनका इतना ज़ोर देना वस्तुत: 'अभिव्यंजित' को पूरी सच्चाई और सामर्थ्य से प्रस्तुत करने पर ज़ोर देना है। इसे उन्होंने चीज़ों की अपनी 'ख़ास' निजी 'भाषा' कहा है— जिनसे वे कलाकार से बातें करती हैं। उन्होंने हिन्दी कविता के संवेदन और भाषा के बुनियादी ढाँचे में प्रतिभापूर्ण परिवर्तन किया, नए जार्गन दिए। इससे वे कहीं-कहीं दुरूह भी लगते हैं, परंतु उनके शिल्प की प्रवृत्ति समझ लेने पर, दुरूहताएँ आपोआप ख़त्म होने लगती हैं। कहीं-कहीं दुरूहताएँ — व्याकरण, निरुक्त, शास्त्र-प्रेमियों ने भी पैदा की है और कहीं शिविर बद्धों ने भी— शमशेर की कविता तक पहुँचने के लिए इन्हें भी लाँघना होता है।

अपार ध्वनियों की सिंफ़नी

शमशेर अत्यंत अधीत व्यक्ति थे। यह भी उनकी जन्मजात प्रवृत्ति थी। बचपन में जेब ख़र्च के पैसे वे किताबें ख़रीदने में ख़र्च करते थे। उन्हें परिवेश और विरासत में उर्दू-फ़ारसी मिली थी, अंग्रेज़ी से भी ख़ूब लगाव था। प्रारंभ में वे उर्दू शायरी करते थे। अंग्रेज़ी में भी कविताएँ लिखते थे, उन्होंने बेशुमार अंग्रेज़ी छंदों का प्रयोग किया था। उनकी वे कविताएँ आज उपलब्ध नहीं हैं। हिन्दी का भी समानांतर अध्ययन चलता रहा था, जिसे धार मिली थी इलाहाबाद में; और वे मूलत: हिन्दी के कवि हो गए— उर्दू-फ़ारसी-अंग्रेज़ी परंपरा को आत्म-सात किए हुए। भारतीय परंपरा उन्हें विरासत में मिली थी, जिसके प्रति उनका गहरा लगाव रहा है। संस्कृत का ज्ञान न होने का उन्हें अंत तक दुख रहा, परंतु अन्य माध्यमों से उन्होंने भारतीय काव्य की परंपरा का परिचय प्राप्त किया। उनकी कविता में वैदिक-औपनिषदिक ध्वनियाँ भी सुनी जा सकती हैं। इस तरह शमशेर के काव्य संस्कार अनेक परंपराओं की सिंफ़नी है।'

वैचारिक स्तर पर मार्क्सवाद ने उन्हें जीवन-यथार्थ और सामाजिक संघर्ष की अर्थवत्ता को समझने की दृष्टि दी; उन्होंने संघर्ष का अर्थ और उसकी शक्ति से अपना हृदय मिलाने की आवश्यकता को महसूस किया :

'वह मज़दूर किसानों के स्वर कठिन हठी!
कवि हे उनमें अपना हृदय मिलाओ
उनके मिट्टी के तन में है अधिक आग..
है अधिक ताप! *(एक प्रभात फेरी/ चुका भी हूँ नहीं मैं)*

चित्रकला ने उनके काव्य को अनेक व्यंजनाएँ दीं। 'निराला और रवीन्द्र' और स्वयं भी अपने दर्शन संबंधी अध्ययन ने उनकी कविता को उदात्त अर्थ दिए। ये सब मिलकर एक सार्थक विकसित, समन्वित, शोषण-विहीन विश्व-कामना में ढले हैं।

राग है धरती

शमशेर की कविताएँ राग की धरती से उगी और वायु मंडल की हवा और ताप में पकी हुई हैं। उन्होंने लिखा भी है— 'मेरी असली ज़मीन रोमानी रही और रोमानी ही बनी रही।' परंतु इस रोमानियत से, राग से, रस खींच कर उन्होंने उसे लौकिक अर्थवत्ता दी है। उनकी मानवीय संवेदना, जीवन-सौन्दर्य, विश्व-बंधुता और अन्यान्य भावों का प्रसार उनके राग को महाराग में बदलता है और अभिव्यंजना को ऐसा आत्मीय रूप देता है कि वह पाठक के अंतर्जगत में प्रवेश कर उसे विवेक सम्मत, जीवन-संवेदी दृष्टि दे सके। इसलिए उनके राग को महज रोमानियत के सतही अर्थ में सीमित नहीं किया जा सकता। वह प्रेम और सौन्दर्य ही नहीं, आंतरिक तरलता, आवेग और ऊर्जा भी है जो दृष्टि सम्पन्न होकर मनुष्यता का वृहत्तर अर्थ धारण करती है। 1980 में लिखी *'उदिता'* की भूमिका में स्वयं उनका कहना है :

> 'प्रेम की भावुकता ने जो बीज बोया है, वह मैं देखता हूँ कि अकारथ नहीं गया, क्योंकि पूरी मनुष्य-जाति से प्रेम, युद्ध से नफ़रत और शांति की समस्याओं से दिलचस्पी— ये सभी बातें उसी से धीरे-धीरे मेरे अंदर पैदा हुईं।'

पद्य की तरह गद्य में भी समाभ्यस्त

शमशेर के विचारात्मक और विवेचनात्मक निबंधों, कहानियों, स्कैच और डायरी में उनके गद्य की निजी पहचानें हैं, उनमें कवित्व का समावेश है, भाषा का सर्जनात्मक उपयोग है और चिंतन में मौलिकता, वर्णन में चित्रात्मकता और भाव संपन्नता है। विवेचन में उनका 'आत्म' बड़ी प्रबलता से उतरता है, परंतु वह विवेक की डोर भी थामे रहता है। उनके गद्य में एक खुलापन, उदारता और वैविध्य है। उसमें उनका अध्ययन, चिंतन,समय, समाज और इतिहास बोध तथा विश्लेषण और अन्वेषण की प्रवृत्ति देखी जा सकती है। लगता है जो कविता में नहीं कहा जा सका था, या उसके बाहर कहना, विवेचित करना, आँकना और वर्णित करना ज़रूरी था उसे उन्होंने गद्य में ढाला है। समकालीन और नवोदित रचना-पीढ़ी के प्रति गंभीर दायित्व उनके निबंधों में प्रकट हुआ है। उन्होंने गद्य में भी कभी कबड्डी का खेल नहीं खेला, दूसरे पालों के लोगों की टँगड़ी पकड़कर नहीं खींची, क्योंकि

वे जो खेल रहे थे, उसमें विजय की शर्त दूसरों को पराजित करना नहीं, उन्हें प्यार करना, आश्वस्त करना, प्रेरित करना थी। वे जानते थे कि अपने सिद्धांतों और अवधारणाओं को दूसरे के भीतर किन आत्मीय माध्यमों से ढाला जाता हैं। कहानी और स्केच यदि उनके व्यक्तिगत और सामाजिक अनुभव और प्रेक्षण के प्रतिरूप हैं तो उनकी डायरी उनके कवि और व्यक्ति का निजी लेखा-जोखा— जिसमें दूसरों के लिए बहुत कुछ है सीखने, समझने अनुभव करने को है —और नितांत सर्जनात्मक अर्थ में।

शमशेर ने नए कवि से कहा था— 'नए बादल, वह कोना खाली है देखो देखो' यह खुद उनकी भी तलाश और खोज रही है। नए वे आजीवन बने रहे, और अन्वेषित करते रहे नई नई भूमियाँ। तभी वे अद्वितीय कवि और शिल्पी बन सके। सब कुछ अनायास थोड़े ही होता है।

शमशेर हिन्दी के अद्वितीय कवि हैं उन्होंने हिन्दी काव्य को नये संवेदन, बिम्ब, ध्वनियाँ, भाषा और व्यक्तित्व दिया। भारतीय सर्जना की एंद्रियता से लगाकर अनुभूति की उदात्ततम प्रवृत्ति का साक्षात्कार यहाँ किया जा सकता हैं। सौन्दर्य, प्रेम, मानवीयता और सामाजिक दृष्टि का जो सूक्ष्म, गहन, प्रांजल और व्यापक स्वरूप उनके काव्य में मिलता है, वह अनूठा है।

परिशिष्ट : एक

शमशेरबहादुर का पत्र : लेखक के नाम

डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय के लेख पर मेरी प्रतिक्रिया

'गोया कवि न हो, कविता की सीढ़ी हो!'

—कहीं मुझे यह बात बहुत सटीक लगती है। वास्तव में मैंने कविता की सीढ़ियों पर, धीरे-धीरे (कभी तेज़-तेज़ भी) ऊपर या आगे बढ़ते अपने को पाया है।

'नैसर्गिकता...' 'अधीर-सी, थरथराती हुई...' मानो हाल के लिपे हुए गीले आँगन-जैसा सुबह का आकाश'

—यह टुकड़ा 'थरथराती हुई' भी मुझे सटीक लगा। यह लफ़्ज़ 'थरथराहट' मेरी दो कविताओं में (उनके शुरू में ही) आया भी है।

'गीले आँगन जैसा सुबह का आकाश' गुम्फित इमेज तो है ही, घरेलू-सा भी है। निम्न-मध्यवर्गीय वातावरण वाला, मौन रूप से घरेलू, उसी बिम्ब का आकाश की सिम्त में प्रसार, विस्तार हो उठा है, अपना घरेलूपन लिये हुए।

आगे आपने बिम्बों की भाषा में ही मेरी कविता का स्वरूप पेश किया है।

'कोई भी आलोचना, कविता के मुक़ाबले में ज़्यादा ठोस कृत्रिम रोक-टोक सी लगती है। कविता की नितान्त निजता... पाठक की निजता को भीतर से उकसाती है और कविता का एकदम ताज़ा और अलग-सा स्वाद देती है। वह कहीं न कहीं भीतर का बंधन खोलती है। शमशेर की कविता पाठक को बाँधती नहीं है, उसे, उसके राग को छू देती है...'

—अगर ऐसा मैं कर सका हूँ, या जहाँ-जहाँ भी मैं ऐसा कर सका हूँ, मैं मानने को तैयार हूँ कि मैं अपने गन्तव्य को बहुत-कुछ पा सका हूँ, कविता रच सका हूँ। वास्तव में मैं कभी पाठक को बाँधना नहीं चाहता, वह अपने को पाये मेरी कविता की 'निजी' अनुभूति में... जो कि उसकी अपनी निजी डिस्कवरी होगी... यही मेरे निकट कला की अवधारणा है।

---

* '*आलोचना*' में प्रकाशित लेख 'शमशेर : भाव साध्य पावनता' (जो पुस्तक में कुछ संवर्धित रूप में 'एक पूरा कवि' शीर्षक से है) पर शमशेर ने हाथ से लिखे 7 फुलस्कैप में अपनी प्रतिक्रिया प्रकट की थी। शमशेर को समझने में अत्यधिक सहायक होने के कारण उसे यहाँ ज्यों का त्यों प्रकाशित किया जा रहा है -प्र. श्रो.

मुक्तिबोध के शब्द 'गंभीर प्रयत्न-साध्य पवित्रता' में 'प्रयत्न-साध्य' द्रष्टव्य है। इस पर आपकी टिप्पणी कि वह 'प्रयत्न-साध्य है ही कहाँ —वह भाव-साध्य है, और 'पवित्र' भी नहीं 'पावन' सच्चाई तो लिये हुए है, मगर... जो कुछ मुक्तिबोध कहना चाहते हैं, उसका साक्ष्य मुझे कविता में नहीं, कविता के जन्म से पूर्व के कुछ ऐसे संस्कारों में मिलता है जो उसके सहजोद्भव में अपना प्रभाव दिखाते हैं। और उन संस्कारों में एक संघर्ष की धारा होती है। यह संघर्ष भावुकतापूर्ण रुझानों का, कुछ 'सात्त्विक-से' आदर्शों से होता है, होता रहता है : भावनाओं के उदात्तीकरण की प्रक्रिया, अपने अंदर से स्वार्थपरता और वासना के निचले स्तरों को दूर करना और उसके ऊँचे स्तरों में एक शैलीगत आदर्श-विभोरता ढूँढ़ना और (अक्सर) पाना : राग के अन्दर रहते हुए अपने को कहीं तटस्थ ही करते रहना —शायद एकाकी जीवन की यह अनिवार्यता हो, कह नहीं सकता। 'प्रयत्न-साध्यता' और 'पवित्रता' कविता से बाहर उसके उदय होने के पहले के दौर में मानसिक ऊहापोह का धूमिल या स्पष्ट अंग होती है। नीर निर्मल ही कहाँ रहता है सदा, मगर निर्मल नीर की खोज ज़रूर चलती रहती है। प्रेम और सौंदर्य के अद्भुत साक्षात्कार के क्षणों को कभी-कभी शब्दों या रेखाओं में बाँधने की लालसा जग उठती है। और अचानक मानो, कविता का जन्म हो उठता है। 'इसीलिए शब्द कहाँ है?' शब्द केवल अनुभूतियों के स्वरूप-संकेत हैं। पर ये सब काव्य-प्रयासों के क्रम ही हैं।

—आपने बहुत सही समझा है इस उद्धरण को— 'मुझे न मिलेंगे आप, आपका एकाकी क्षण हूँ मैं!'

मैं कभी-कभी शायद, या अक्सर (?) अपने से हटकर, अपने चारों तरफ़ के माहौल, मय व्यक्तियों, के अन्दर इस तरह डूब जाता हूँ, गोया जैसे उनके केन्द्र में जो आत्मा या प्राण है, लगभग वह मैं हूँ, वह कैसे हैं प्राण... वह आत्मा कैसी है, शायद मैं यही महसूस करने की कोशिश करता हूँ। मेरी कविता (कभी-कभी) इसी कोशिश का अंजाम बनकर आती है।

'यह काव्य-आत्मा रोमांटिक है' बेशक! बेशक, उसके अन्दर 'वर्ण-गीत का मर्म' छुपा हुआ है। मुझे काफ़ी संतोष मिला यह देखकर कि कुछ तो पाठक हैं जो 'प्रेम का स्पंदन और धड़कन' इन कविताओं में सुन सकते हैं। तो ये कविताएँ असफल नहीं हो गयीं।— यानी ये अनुभूतियाँ।

हालाँकि 'क्लासिकल' ('रोमानियत' के विलोम के रूप में) एक बेमानी लफ़्ज़ है, फिर भी यह अजब बात लगेगी कि मैं कला के क्लासिकल आदर्शों को ही पकड़ने की निरंतर कोशिश में रहा हूँ। ऐसा मेरा ख़याल है। यह वाक्य आपका, मार्मिक़ है कि— 'यदि उनका रुझान प्रगतिशीलता की ओर— कविता में— होता तो उनमें क्लासिकल प्रवृत्ति विकसित होने की गुंजाइश भी थी। पर शायद

उन्होंने अन्तिम रूप से यह समझ लिया है कि वे उनसे अच्छी नहीं बन सकती'

मैं समझता हूँ कि कविता के अन्दर मेरा यह एक बड़ा संघर्ष रहा है कि मैं प्रगतिशीलता के तत्त्व प्राप्त कर सकूँ। मगर बेशक, ज़बरदस्ती उन्हें ठूँसकर नहीं, बल्कि वह उसमें आन्तरिक रूप से, अपने निसर्ग से पैदा हो। ज़ाहिर है कि जीवन में जो सच्चाई मौजूद न होगी, कृतित्व में कहाँ से आयेगी? मेरा जीवन एक स्वप्न देखने वाले का रहा है : मेरा ख़याल है कि सपने एक महत् प्रगतिशील भविष्य के भी रहे हों, या जो भी रहे हैं उनमें प्रगतिशील तत्त्व सक्रिय कहीं-न-कहीं हैं। बिना उसके, सच्चे रोमांटिसिज़्म के भी कोई माने नहीं।

आपका यह वाक्य तो सही नहीं है कि मैं सक्रिय रूप से कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़ा रहा हूँ (सन् 49-50 तक सक्रियता का कुछ कुछ संबंध रहा। ख़ैर)— ऐसा होता तो कविता में देश की राजनीतिक और सामाजिक हलचलों के ठोस यानी कान्क्रीट और फ़ोर्सफुल चित्र उभरते। वैसा नहीं हुआ है। कभी-कभार ही अपवाद-स्वरूप कुछ ठोस-से चित्र प्रस्तुत हो सके हैं। बहरहाल इस बहस के अंत में आपने जो बात कही है वह दो-टूक सही है : 'यानी— एक तरह से देखा जाय तो उनकी प्रगतिशील कविताओं में जो स्वप्न, आशाएँ और सम्भावनाएँ भरी हुई हैं वे इन कविताओं को भी रोमांसिक ही बना देती हैं, लेकिन यह रोमांसिक आत्मपरक नहीं, मनुष्य या विश्वपरक है।'

आपकी इस बात की भी मैं ताईद करता हूँ कि 'इसका अर्थ नहीं कि वे अपनी प्रगतिशील रचनाओं से जितने निराश दीख पड़ते हैं वास्तव में वे ऐसी हैं, बल्कि वे उसमें कुछ और ताक़त, कुछ और गहराई पैदा करना चाहते हैं।' बेशक मेरी कविताओं की 'दुरूहता' को भी आपने बहुत अच्छी तरह समझाया है।

वाक़या यह है कि आपने मेरी कविता की इतनी गहराई से व्याख्या की है, और इतनी तन्मयता से उस पर लिखा है, कि अपनी ही कविता-रचना की कोशिशों की दाद दिये जाने की मैं ख़ुद दाद दूँ— यह बड़ा ही संकोच का विषय लगता रहा है। मगर यह भी वाक़या है कि आपका लेख काव्य-प्रेमी पाठकों के लिए मेरी कविताओं को काफ़ी सुगम कर देता है। मैं आपको आपके सच्चे, सफल परिश्रम पर साधुवाद भी देता हूँ, और आपका ऋणी भी महसूस करता हूँ। ग़ालिब मेरी ही जैसी स्थिति के बारे में कहते हैं—

बिक जाते हैं . हम आप मताए-सुख़न के साथ
—लेकिन अयार-तब्अ (पारखी वृत्ति के)ख़रीदार देखकर।

शमशेर बहादुर सिंह

22-8-78

जी 3/8, मॉडल टाउन, दिल्ली-9

परिशिष्ट : दो

(पुस्तक में संदर्भित कविता)

राग

मैंने शाम से पूछा—
        या शाम ने मुझसे पूछा :
                इन बातों का मतलब।
मैंने कहा—
शाम ने मुझसे कहा :
            राग अपना है।

2

आँखें मुँद गयीं।
सरलता का आकाश था
जैसे त्रिलोचन की रचनाएँ।
नींद ही इच्छाएँ।

3

मैंने उससे पूछा—
उसने मुझसे :
        कब?
मैंने कहा—
उसने मुझसे कहा :
            समय अपना राग है।

4

तुमने 'धरती' का पद्य पढ़ा है?
उसकी सहजता प्राण है।
तुमने अपनी यादों की पुस्तक खोली है?
जब यादें मिटती हुई एकाएक स्पष्ट हो गयी हों?
जब आँसू छलक न जाकर
आकाश का फूल बन गया हो?
—वह मेरी कविताओं-सा मुझे लगेगा :
तब तुम मुझे क्या कहोगे?

5

उसने मुझसे पूछा, तुम्हारी कविताओं का क्या मतलब है?
मैंने कहा—कुछ नहीं।
उसने पूछा—फिर तुम इन्हें क्यों लिखते हो?
मैंने कहा—ये लिख जाती हैं। तब
इनकी रक्षा कैसे हो जाती है?
        उसने क्यों यह प्रश्न किया?

मैंने पूछा :
मेरी रक्षा कहाँ होती है? मेरी साँस तो—
तुम्हारी कविताएँ हैं : उसने कहा। पर—
इन साँसों की रक्षा कैसे होती आई?
वे साँसों में बँधे गये; शायद ऐसे ही रक्षा
        होती आई। फिर बहुत-से गीत खो गए।

6

वह अनायास मेरा पद गुनगुनाता हुआ बैठा
        रहा, और मैंने उसकी ओर
        देखा, और मैं समझ गया।
और यह संग्रह उसी के हाथों में खो गया।

7

उसने मुझसे पूछा, इन शब्दों का क्या
        मतलब है? मैंने कहा : शब्द
        कहाँ हैं? वह मौन मेरी ओर

देखता चुप रहा। फिर मैंने
श्रम-पूर्वक बोलते हुए कहा—कि :
शाम हो गयी है। उसने मेरी
आँखों में देखा, और फिर—एकटक देखता
ही रहा। क्यों फिर उसने मेरा सग्रह
अपनी धुँधली गोद में खोला और
मुझसे कुछ भी पूछना भूल गया।
मुझको भी नहीं मालूम, कौन था
वह। केवल यह मुझे याद है।

8

नव छंदों के तार खिंचे-खिंचे थे,
राग बँधा-बँधा था,
प्यास उँगलियों में विकल थी—
कि मेघ गरजे;
और मोर दूर और कई दिशाओं से
बोलने लगे—पीयूअ्! पीयूअ्! उनकी
हीरे-नीलम की गर्दनें बिजलियों की तरह
हरियाली के आगे चमक रही थी।
कहीं छिपा हुआ बहता पानी
बोल रहा था : अपने स्पष्टमधुर
प्रवाहित बोल।

परिशिष्ट : तीन

शमशेर बहादुर सिंह

जीवन-रेखा और साहित्य

जन्म : 3 जनवरी, 1911 देहरादून
जन्म नाम : कुलदीप सिंह
पिता : बाबू तारीफ़ सिंह (निधन : 1939)
माता : परम देवी (निधन : 1920)

आरम्भिक शिक्षा देहरादून और गोंडा। हाई स्कूल 1928, इण्टरमीडिएट 1931; बी. ए. 1933, एम.ए. प्रीवियस 1938। फाइनल नहीं कर सके।

1929 धर्मदेवी से विवाह। 1935 : यक्ष्मा से धर्मदेवी का देहान्त

1935-36 : उकील-बंधुओं से कला का प्रशिक्षण।

1939 : पन्त जी के *'रूपाभ'* में कार्यालय-सहायक।

1940 : *'कहानी'* पत्रिका में।

1941-42 : रामेश्वरी गर्ल्स कॉलेज, बनारस में अध्यापन।

1945-46 : बम्बई में कम्युनिस्ट पार्टी के कम्यून में रहते हुए *'नया साहित्य'* का संपादन कार्य।

1948-54 : 'माया' में सहायक सम्पादक। 'नया पथ' और 'मनोहर *कहानियाँ'* में सम्पादन सहयोग।

1965-77 : दिल्ली विश्वविद्यालय के उर्दू विभाग में विश्वविद्यालय अनुदान, आयोग की परियोजना के अन्तर्गत *'उर्दू-हिन्दी कोश'* का संपादन।

1977 : *'चुका भी हूँ नहीं मैं'* के लिए साहित्य अकादेमी पुरस्कार उसी वर्ष मध्यप्रदेश साहित्य परिषद का तुलसी पुरस्कार।

1978 : सोवियत संघ की यात्रा।

1987 : मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार। (मध्यप्रदेश शासन)

1981–85 : विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मध्यप्रदेश में 'प्रेमचंद सृजन पीठ' के अध्यक्ष।

1989–90 : कबीर सम्मान। (मध्यप्रदेश शासन)

12 मई, 1993 को अहमदाबाद में देहान्त

शमशेर की रचनाएँ

काव्य :

1. कुछ कविताएँ : चयनकर्ता और प्रकाशक, जगत शंखधर, डी. 53/96 कमच्छा, वाराणसी, मई,1959
2. *कुछ और कविताएँ* : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1961
3. *चुका भी हूँ मैं नहीं* : राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1975
4. *इतने पास अपने* : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1980
5. *उदिता— अभिव्यक्ति का संघर्ष* : वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1980
6. *बात बोलेगी* : भावना प्रकाशन, हापुड़, 1981
7. *काल तुझसे होड़ है मेरी* : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1990
8. *कहीं बहुत दूर से सुन रहा हूँ* : राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1995

गद्य :

1. *कुछ गद्य रचनाएँ* : ('दोआब', सरस्वती प्रेस, बनारस, 1942 और 'प्लाट का मोर्चा', न्यू लिटरेचर, इलाहाबाद, 1951, शामिल) संभावना प्रकाशन, हापुड़, 1989
2. *कुछ और गद्य रचनाएँ* : राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992

चयन :

1. *दूसरा सप्तक* : भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1955, अन्य कवियों के साथ
2. *प्रतिनिधि कविताएँ* : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1990

अनुवाद :

(उर्दू से)

1. *कामिनी*
2. *हुश्शू*
3. *पी कहाँ* : तीनों सरशार के उर्दू उपन्यास : प्रकाशक : सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1948
4. *उर्दू साहित्य का संक्षिप्त इतिहास* : प्रो. एज़ाज़ हुसैन, राजकमल

प्रकाशन, दिल्ली. 1957
(अंग्रेजी से)

5. *षड्यंत्र : साएर और काहन,* (सोवियत विरोधी गतिविधियों का इतिहास) पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, 1946
(रूसी के अंग्रेज़ी अनुवाद से)

6. *पृथ्वी और आकाश* : उपन्यास, लेखक वान्दा वासिलवास्का। सरस प्रेस, बनारस, 1944

7. *आश्चर्यलोक में एलिस,* लुई कैरोल। राजकमल प्रकाशन,दिल्ली,